Reg. No. 124726035RC0001 ISSN : 2562-6086

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

October-December 2022
Pustak Bharati, Toronto, Canada

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

PUSTAK BHARATI RESEARCH JOURNAL

A Peer Reviewed Journal

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष- 4, अक्टूबर –दिसंबर, 2022, अंक – 4

प्रधान संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे

रिव्यू कमेटी

डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा, तिरुवनन्तपुरम्
प्रो. हेमराज सुंदर, मारीशस
डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, मुंबई
प्रो. डॉ. शांति नायर, केरल
डॉ. सिराजुद्दिन नुर्मतोव, उजबेकिस्तान
प्रो. दक्ष्य मिस्त्री, बड़ोदा
प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

संपादक मण्डल

प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, पश्चिम बंगाल
प्रो. अरुणा सिन्हा, वाराणसी
प्रो. विनोद कुमार मिश्र, त्रिपुरा
प्रो. उमापति दीक्षित, आगरा
प्रो. उपुल रंजीथ हेवावितानागामगे, श्रीलंका
डॉ. मैरम्बी नुरोवा, ताजिकिस्तान
प्रो. दर्शन पाण्डेय, दिल्ली

परामर्ष मण्डल

डॉ. तुलसीराम शर्मा, कनाडा
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली
डॉ. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर
प्रो. नीलू गुप्ता, अमेरिका
डॉ. मृदुल कीर्ति, आस्ट्रेलिया
प्रो. कमलेश शर्मा, कोटा

संरक्षक मण्डल

डॉ. यशवंत पाठक, अमेरिका
श्री रतन पवन, अमेरिका
श्री पंकज पटेल, अमेरिका

पत्रिका का मूल्य / सदस्यता राशि संस्था के सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मंगारी के खाता संख्या 5144696109 (IFSC: CBIN0281306) में जमाकर उसकी सूचना मेल या नं. +91-7355682455 पर दें।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

1. राष्ट्रीय एकीकरण में हिन्दी की भूमिका 1
   डॉ. पवन अग्रवाल
2. राजभाषा हिन्दी बनाम जनभाषा हिन्दी 7
   डॉ. प्रकाश उदय
3. काशी नागरीप्रचारिणी सभा : हिंदी की प्रथम अंतर्राष्ट्रीय प्रचारक संस्था 15
   डॉ. राकेश कुमार दूबे
4. वैश्विक स्तर पर हिन्दी की स्वीकृति एवं व्याप्ति 23
   प्रो. दिविक रमेश
5. विदेशों में हिन्दी का विकास 30
   डॉ. निशा झा
   डॉ. राम कृष्ण झा
6. विदेशों में भारतीय संस्कृति की संवाहक हिंदी : मॉरीशसीय संदर्भ में 36
   डॉ. अलका धनपत
7. हिंदी का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्वरूप 41
   पैड़ाला रवींद्रनाथ
8. ताजिकिस्तान में हिंदी का गठन और विकास 45
   डॉ. मैरम्बी नुरोवा
   अलिख़ान लतिफोव
9. ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी के प्रचारक : डॉ. दिनेश श्रीवास्तव 51
   मृदुला कक्कड़
10. हिंदी के वैश्विक विकास में प्रौद्योगिकी-अनुवाद का योगदान 56
    प्रो. (डॉ.) अर्जुन चव्हाण
11. विश्व हिंदी सम्मेलन : उपलब्धियाँ और प्रासंगिकता 65
    प्रो.(डॉ.) एस. तंकमणि अम्मा
12. संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी के लिए प्रयास 72
    सुशील कुमार राम
13. विश्वभाषा की ओर अग्रसर हिंदी 78
    डॉ. अनिल सिंह
14. समकालीन भाषा, साहित्य और तकनीक 82
    डॉ. सत्यनारायण स्नेही

* प्रत्येक शोध-पत्र में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। संपादक मंडल का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

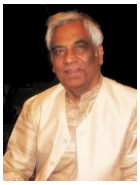

रत्नाकर नराले

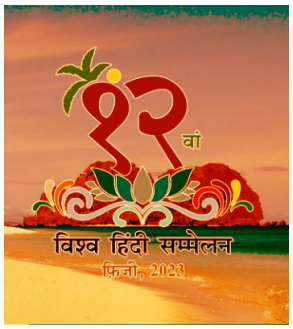

बारहवें विश्व हिन्दी सम्मेलन की हार्दिक बधाई

भारत के यशस्वी प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने समीचीन ही कहा है - "भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है। हिंदी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।"

इसी तरह के महान सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तत्त्वों से प्रभावान्वित हिंदी विद्वज्जनों द्वारा विश्व हिंदी सम्मेलन की परिकल्पना वर्धा में जागृत हुई थी। हिंदी का सम्पूर्ण इतिहास संघर्षों का इतिहास रहा है और आज भी वह संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्ज़ा प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए ही विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना की गयी थी। विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रथम सत्र जनवरी, 1975 नागपुर से अब क्रमशः बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फिजी सरकार के सहयोग से फरवरी, 2023 में विदेश मंत्रालय भारत सरकार द्वारा फिजी में आयोजित किया जा रहा है। मॉरीशस के 2018 के ग्यारहवें सम्मेलन में हमें भारत सरकार की तत्कालीन विदेश मंत्री आदरणीया श्रीमती सुषमा स्वराज जी द्वारा सम्मानित किया गया था। यह पुस्तक भारती के लिए गौरव का उच्चांक था।

बारहवें सम्मेलन के उपलक्ष में आप सभी को हार्दिक बधाई एवं सम्मेलन के सभी सत्रों में आपका स्वागत है। आइए हम सब अपने-अपने वैयक्तिक रूप में तथा हम सब मिल कर यथा संभव योगदान दे कर सम्मेलन को सफल करें।

जय हिन्द ! जय हिंदी !

1

राष्ट्रीय एकीकरण में हिन्दी की भूमिका

डॉ. पवन अग्रवाल

हिन्दी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा है और जनमानस की दृष्टि में राष्ट्रभाषा। भारत एक संस्कृति बहुला और बहुभाषी राष्ट्र है जिसमें लगभग 1600 भाषाएँ प्रचलित हैं जिसमें से 22 भाषाओं को संवैधानिक रूप से अष्टम् सूची में स्थान दिया गया है, राज्यों का बंटवारा भाषायी आधार पर और 24 साहित्य अकादमियाँ हैं। भारतमाता अलग–अलग भाषा में बोलती है किन्तु इसका स्वर एक है। इनमें रचित साहित्य की आत्मा एक है।

किसी भी भाषा के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व हमें इस तथ्य से पूर्णतः आश्वस्त हो जाना चाहिए कि भाषा, समाज और संस्कृति का गहरा संबंध है। जब–जब समाज में राजनैतिक परिवर्तन आएगा, संस्कृति संक्रमण से गुजरेगी, तब–तब भाषा को भी अपनी समकालीन परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं में बदलाव लाना पड़ेगा। यदि किसी भाषा की यह प्रकृति समाप्त हो जाती है तो वह भाषा निष्प्रयोजनीय होकर 'आर्काइवल' बन जाती है और जो भाषा समय को पहचानकर, उससे कदमताल करती हुई, युगीन परिस्थिति एवं आवश्यकतानुकूल अपने को ढालती जाती है, वह जीवन्त रहती है।

यह सौभाग्य का विषय है कि हिन्दी भाषा में यह क्षमता विद्यमान है। यही कारण है कि अपने प्रारंभिक काल (10–11शती) से लेकर आज तक अपनी प्रयोजनीयता सिद्ध करके, क्षेत्रीय परिधि को पारकर सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा का पद पाकर, इस भूमंडलीकरण के समय विश्वभाषा बनने के लिए प्रयत्नरत है। इतना ही नहीं अपनी सामासिक एवं आत्मसात् करने की क्षमता एवं साहित्यिक प्रदेय के कारण यह भारत की अस्मिता एवं राष्ट्र की एकता की संवाहक रही है।

प्रश्न यह उठता है कि बाईस–बाईस भाषाओं की संवैधानिक स्वीकृति के पश्चात् भी हिन्दी भाषा में वे कौन–कौन से गुण हैं कि उसने अवसर विशेष पर न केवल कश्मीर से कन्याकुमारी तक, गुजरात से पूर्वोत्तर तक भारत के एकीकरण में महती भूमिका निभाई और परिस्थिति अनुकूल कभी सौहार्द और प्रेम की भाषा बनकर, कभी प्रतिरोध के स्वर प्रधान कर और कभी समय की आहट को पहचानकर दिनोंदिन विकसित ज्ञान के परिक्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कर, भारत की एकता की संवाहिका बनी।

इस दृष्टि से विचार करने पर एक बात उभरकर आती है, वह है कि भौगोलिक एवं भाषिक दृष्टिकोण से हिन्दी लगभग आधे भारत का प्रतिनिधित्व करती है। क्षेत्रफल के अनुसार, भारत लगभग 32.87 लाख वर्ग मीटर में फैला हुआ है। हम हिन्दी को क्यों स्वीकार कर रहे हैं? इसलिए नहीं कि यह भारत की सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इसका मुख्य कारण है कि यह अकेली भाषा है जिसे आज देश में सबसे अधिक इकट्ठा कोई वर्ग समझता है। यदि आज की 32 करोड़ की जनसंख्या में 14 करोड़ लोग किसी भाषा को समझते हैं और यदि वह भाषा प्रगति विकास की सामर्थ्य रखती है तो वह हमें समस्त भारत के उपयोग के लिए स्वीकार कर लेना चाहिए।[1] जिसमें हिन्दी भाषी राज्य (मूलतः 10 की गणना की गई है) के अनुसार 13,55,408 वर्ग मीटर भौगोलिक क्षेत्र हिन्दी राज्यों की परिधि में आता है। ठीक भाषायी दृष्टिकोण से विचार करने पर,

[1] राजभाषा हिन्दी : कल, आज और कल, सुरेन्द्र शर्मा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ0 40

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल 1,21,08,54,977 (एक अरब इक्कीस करोड़ आठ लाख चौंअन हजार नौ सौ ससहत्तर) थी जिसकी घोषणा 26 जून, 2018 को की गई थी। इसमें से हिन्दी को मूलभाषा मानने वालों का प्रतिशत 43. 63% था तथा द्वितीय एवं तृतीय की गणना की जाए तो 57.10 प्रतिशत।[2]

उपर्युक्त आकड़े स्पष्ट करने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि हिन्दी भाषा एवं हिन्दी क्षेत्र लगभग आधे भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं, निश्चित रूप से अधिक क्षेत्रफल एवं अधिक भाषा–भाषी होने के कारण हिन्दी से राष्ट्रीय एकता को संरक्षित रखने की अपेक्षा की जाती है। यही कारण है कि पौराणिक एवं एतिहासिक रूप से देखें तो भारत का यह मुख्य भाग राजनीतिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक आदि दृष्टि–कोण से आकर्षण का केन्द्र रहा है। यहाँ के शासकों (विशेषतः दिल्ली) का आधिपत्य वर्तमान संघीय ढांचे के अन्तर्गत संघ सरकार, दिल्ली से राष्ट्र का नियंत्रण करती है।

हिन्दी को राष्ट्रीय एकता के लिए उत्तरदायी भावना या हिन्दी द्वारा इस धर्म का निर्वाह करने का दूसरा प्रमुख कारण है–हिन्दी की आदिभाषा संस्कृत का उत्तराधिकारिणी अथवा अनुगामिनी होना। यह सर्वमान्य है कि संस्कृत भारत या कहें विश्व की प्राचीनतम् भाषा है। हालांकि विद्वानों में मतभेद रहा है और पादरी कोल्ड वेल द्वारा द्रविड़ विशेषतः तमिल को प्राचीनतम्/संस्कृत के समकक्ष बताया जाता है।

"There is a prepondence of evidence in favour of the mutually independent origion of both. The Sanskrit word and the Dravian one, form a source which appear to have been common both"[3]

श्री कोल्डवेल ने जो तेरह लक्षण द्रविड़ भाषाओं के इंगित किये थे, उनके संदर्भ में आचार्य काशीराम शर्मा ने सिद्ध किया कि 13 में से 10 लक्षण हिन्दी में होते हैं। डा. राजमल बोटा ने भी भारत के भाषा परिवार पुस्तक में कोल्डवेट की स्थापना का खंडन किया।[4]

मेरा उद्देश्य यहाँ किसी भी भाषा पर आक्षेप लगाना नहीं है अपितु यह मानना है कि संस्कृत और द्रविड़ (तमिल) भाषा को किसी एक मूल भाषा का उद्गम मान भी लिया जाए तो उनकी प्रवृत्ति में कहीं न कहीं साम्य होगा। अर्थात् संस्कृत भाषा आदिकाल में प्रतिनिधि भाषा थी और उसकी अनुगामिनी हिन्दी और तमिल बनीं। जो हमारा स्रोत होता है, उसमें कुछ तथ्य साम्य रूप में प्राप्त होते हैं। अतः हिन्दी भाषा में भी भाषायी परिवार अलग होने पर भी तादम्य की संभावना अपार है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रारंभिक दौर में हिन्दी का उदय संस्कृत भाषा के प्रति जन–उपेक्षा और सरलीकरण की प्रक्रिया स्वरूप हुआ था। हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है– ''भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने संस्कृत के एकाधिपत्य को अस्वीकार किया था, उन्होंने लोकभाषा को अपना करके अपने उपदेश प्रचार किये थे, ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत भाषा को इस युग में पहली बार एक प्रतिद्वन्दी भाषा का सामना करना पड़ा था।''[5] 'इन्हीं बुद्ध और महावीर के मत प्रसार की ओर खासकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषा के रूप विकसित हुए।'[6] इन्हीं अपभ्रंश रूपों से मागधी, अर्द्धमागधी और शौरसेनी से अवहट्ट हिन्दी की बोलियाँ विकसित हुईं।

इन बोलियों के प्रारम्भिक काल में, इनके संवाहकों में संस्कृत प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ''सक्कअ बानी बहु न

---

[2]. http://hi.m.wikipedia.org

[3]. A Comparative Grammer of the Dravidian or South-Indian Family languages, Robert Caldwell, Asian Educational Services, New Delhi, 1998, pg. 466

[4]. भारत के भाषा परिवार, राजमल बोरा, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 96

[5]. भाषा साहित्य और देश, आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1998, पृ.10

[6]. हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की विकास यात्रा, रामप्रकाश, पलका प्रकाशन, दिल्ली, 2000,

भावई–विद्यापति, 'संसिकरत है कूल जल'–कबीर और 'का भाखा का संसिकरत'–तुलसीदास ने भाषा को संस्कृत से अधिक महत्त्व दिया। किन्तु इस प्रतिरोध के पश्चात् भी मानक हिन्दी जिस भाषा के सर्वाधिक निकट दिखाई पड़ती है, तो वह भाषा संस्कृत है। इसका कारण है कि संस्कृत 9वीं, 10वीं शताब्दी तक शिक्षा और शासन की भाषा थी। जितना उपयोगी धार्मिक, दार्शनिक, लौकिक एवं ललित साहित्य संस्कृत में तब लिखा गया, उतना आगे–पीछे किसी अन्य भाषा में नहीं और संस्कृत सम्पूर्ण राष्ट्र के समन्वय की शक्ति बनकर उभरी। यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं में काव्य, धर्म आदि का प्रचार–प्रसार होते हुए भी संस्कृत, हिन्दी की सहधर्मिणी के रूप में संग–संग चलती रही और जब हिन्दी को उसकी आवश्यकता पड़ी, उसने हिन्दी को संबल दिया।

इसके अतिरिक्त विचार करें तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि अपनी संरचना के स्तर पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ (किसी भी परिवार की हों) ध्वन्यात्मक व्यवस्था में समान दिखाई पड़ती हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा द्रविण परिवार की भाषाओं का वर्णक्रम है–'अ' से 'अः' स्वर, तथ 'क' से 'ह' व्यंजन। यहाँ तक कि द्रविण परिवार की भाषा तमिल में व्यंजनों की संख्या सीमित और देवनागरी से भिन्न होने पर भी व्यंजनों का क्रम समान है। य, ल, र, व तमिल की विशिष्ट ध्वनियाँ हैं, जिन्हें देवनागरी ने आत्मसात् किया है। शब्द के स्तर पर देखें तो हिन्दी ने व्यापकता के कारण सभी भाषाओं से शब्द ग्रहण किये हैं जैसे–द्रविण, अगरू, चंदन, केतन, मीन आदि, मुंडा–तांबूल, श्रृंगार, आकुल, बांग्ला–उपन्यास, गल्प, धन्यवाद, मराठी वांगमय, लागू, चालू आदि, गुनरसी–हड़ताल आदि। वाक्य रचना की दृष्टि से भी भारतीय भाषाओं में समानता है। भारतीय भाषाएं परसर्गी हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सभी भारतीय भाषाएँ व्याकरणिक दृष्टिकोण से समान हैं। हिन्दी की व्याकरणिक विशेषता में वे आत्मसात हैं। इसलिए हिन्दी को एकक्य की भाषा मानने में कोई संशय नहीं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी बोलियों का समुच्चय है, जिस कारण यह जन से जुड़ी है। चूंकि इसमें आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए यह सार्वदेशिक भाषा है। यदि हम ध्वनि के स्तर पर राजभाषा विभाग द्वारा परिवर्धित मानक वर्णमाला पर दृष्टि डालें तो दिखाई पड़ेगा कि कश्मीरी की च, छ, सिंधी की ग, ज, ह, व, बांग्ला की य, मराठी की ळ, अंग्रेजी की ऑ, फारसी की क, ख, ज, झ, फ आदि ध्वनियाँ इसमें समाहित हैं।[7]

इतना ही नहीं हिन्दी धर्म एवं संस्कृति की संवाहिका भी बनी। लोक की चिन्ता करते हुए मानव मैत्री एवं मानव धर्म की स्थापना में भी हिन्दी ने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व किया। वर्ण, जाति, सम्प्रदाय वर्ग, को अस्वीकृत करके राष्ट्र के समरसता का प्रचार किया। यह भी उल्लेख–नीय है कि इसके लिए ऊर्जा उसे अहिन्दी भाषी प्रदेशों एवं जन से प्राप्त हुई। देश भेद और भाषा भेद को मिटाकर, संत समुदाय जिस प्रांत, भाषा, जाति, वर्ग की दीवार तोड़ने में सक्षम हुआ उसके संवाहक विभिन्न प्रांतों से चलकर भारत के मध्यभाग में आये और उनकी बोली–बानी–विचार, दर्शन को आत्मसात करके हिन्दी भाषा एवं क्षेत्र ने राष्ट्रीय एकात्म–भावना को नई ऊर्जा दी। मलयाली भाषी आदि शंकराचार्य, तमिल भाषी–रामानुजाचार्य, तेलुगु भाषी–बल्लभाचार्य, कन्नड़ भाषी–मध्वाचार्य, मलयालभाषी–इनिंबिकाचार्य, असम के शंकर देव, माधव देव, उड़ीसा के रामानन्द पटनायक, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, पंजाब के गुरूनानक, शेख फरीद, सिंधी–संत रोहल, मुराद फकीर, महाराष्ट्र के नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, गुजरात के संत प्राणदास आदि ने भारत को एक सूत्र में बांधने का उपक्रम किया। उनके शिष्यों – कबीर, सूर, तुलसी आदि ने मानवधर्म को प्रश्रय देकर, हिन्दू–मुस्लिम समन्वय की विराट चेष्टा के मार्ग प्रशस्त किये। इन संतों की वाणी ने जहां एक

[7] https://www.chdpublication.mhrd.gov.in/ebook/pdf/Devanagari_Lipi_and_Hindi_Vartani_ka_Mankikaran.pdf

ओर सामाजिक समरसता का विस्तार किया वहीं मनुष्यत्व को महत्त्व देकर लोकमंगल की कामना की। इस संदर्भ में डॉ. जगदीश गुप्त का कथन उल्लेखनीय है–''भागवताकार से कावेरी तटवासी वैष्णवों का जितना आत्मीयपूर्ण परिचय रहा, उससे कम आत्मीयता वृन्दावन के परिचय की प्रगाढ़ता में नहीं मिलती। इसी वृंदावन से नदिया के द्वीप के चैतन्य महाप्रभु जुड़े हुए थे जिनके व्यक्तित्व में एक ओर गीत गोविंद की पदावली और दूसरी ओर चंडीदास और विद्यापति के पद ऐसे अभिन्न रूप से संग्रन्थित हैं कि उन्हें अलग करना संभव प्रतीत नहीं होता। गुजरात के नरसी मेहता और सूरदास तथा मीरा का जितना घनिष्ठ संबंध है उतना साहित्य की सामाजिक चेतना के बिना किसी प्रकार कल्पित नहीं किया जा सकता।''[8]

मध्यकाल में हमारे संतों, भक्तों और कवियों ने धार्मिक सद्भाव, समरसता, नैतिकता, मूल्यबोध को अपनाकर मुगलसत्ता के प्रति प्रतिरोध खड़ा किया जिसमें हिन्दी की भूमिका अविस्मरणीय है।

हिन्दी ने मुगलों के प्रतिरोध के पश्चात् अंग्रेजों के आगमन एवं भारतीय स्वतंत्रता में अहम् भमिका निभाई। फोर्ट्स विलियम कॉलेज (1803) से निसृत हिन्दी के नये मानकीकृत रूप, जिसे हम आज खड़ी बोली के रूप में हिन्दी का पर्याय मानते हैं, ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिऔध, श्यामसुंदर दास, महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे अनेकानेक रचनाकारों की कलम से परिपक्व हो न केवल साहित्यिक समृद्धि में अपितु, राष्ट्र की अस्मिता परिपक्व हो न केवल साहित्यिक समृद्धि में अपितु राष्ट्र की अस्मिता के लिए राजनीतिक–सामाजिक–आर्थिक–संचारकी भूमिका में प्राण–पण से अपनी लेखनी का योगदान दिया। वास्तविक रूप से देखा जाये तो नये संदर्भों में विकसित हिन्दी ने सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक एक्य की परंपरा से आगे बढ़ते हुए राजनीतिक संगठनों को समृद्ध करके राष्ट्र की एकता को बनाने और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 84 भाषा संबंधी दोहे, अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक की रचनाएँ और राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की ज्ञान–पारिभाषिकी शब्दावली ने हिन्दी को एक नया आयाम दिया। नागरीप्रचारिणी सभा (1893 ई.), सरस्वती (1900ई.) एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1910ई.) की गतिविधियों ने भारतीय एकता के लिए हिन्दी के प्रति आत्म विश्वास भरने का अद्भुत कार्य किया। हिन्दी में दक्षिण भारतीय भाषाओं से परिचित कराने का प्रथम प्रयास–'तमिल देश की पुरानी सभ्यता'–लेख

[8] https://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%8F%E0%A4%B5%E0%A4%82_%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%8F%E0%A4%95%E0%A4%A4%E0%A4%BE_%E0%A4%A1%E0%A5%89._%E0%A4%9C%E0%A4%97%E0%A4%A6%E0%A5%80%E0%A4%B6_%E0%A4%97%E0%A5%81%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%A4#:~:text=%E0%A4%B5%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%A4%E0%A4%83%20%E0%A4%86%E0%A4%A7%E0%A5%81%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%95%20%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80%20%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82,%E0%A4%97%E0%A4%BC%E0%A5%81%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A5%80%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A3%20%E0%A4%A8%20%E0%A4%AC%E0%A4%A8%E0%A5%87%E0%A5%A4

1908 में सरस्वती में प्रकाशित हुआ। रामानन्द चटर्जी ने चतुर्भाषी पत्रिका–बांग्ला, मराठी, गुजराती–हिन्दी में निकालकर भाषायी एवं लिपि के माध्यम से एक्य स्थापित करने का प्रयास किया।

राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता संग्राम की महत्ता को पहचानते हुए आचार्य केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी श्रद्धानंद, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविंद रानाडे, लोकमान्य तिलक, टैगोर, अरविन्द घोष, सुभाष चन्द्र बोस, सी. राजगोपालाचार्य आदि राजनेताओं और साहित्यकारों ने अंग्रेजी राज के विरूद्ध संघर्ष करते हुए, राष्ट्रव्यापी संग्राम में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया। इनमें हजारों ऐसे नेता थे जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी किन्तु हिन्दी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक स्वीकृति को दृष्टिकोण में रखते हुए, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया। अगर यह कहा जाए कि सामाजिक स्तर पर रानाडे, साहित्यिक स्तर पर महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा राजनीतिक स्तर पर महात्मा गाँधी के प्रश्रय से हिन्दी को राष्ट्रैक्य में अद्‌भुत सफलता मिली, तो अन्योक्ति न होगा। डॉ. अच्युतानंद मिश्र लिखते हैं–''महात्मा गाँधी इस श्रृंखला के ऐसे तेजस्वी नेता थे जिन्होंने राष्ट्रभाषा के साथ–साथ हिन्दी को स्वराज संघर्ष का धारदार हथियार बना दिया था। भारत में अपनी राजीनीति शुरू करने के पहले 1910ई. में गाँधी जी ने कहा था– हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा हिन्दी बना सकती है।''[9] राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, चैन्नै में अपने पुत्र को भेजना, गाँधी जी का हिन्दी के प्रति विश्वास ही था।

परिणामतः स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी का अहिंसा आंदोलन, सुभाष के तराने, बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'वन्दे मातरम्', इकबाल का 'सारे जहाँ से अच्छा', श्यामलाल पार्षद का 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' की गूँज राष्ट्र भर में गूंजी और भारत ने हिन्दी की अलख जगाकर राष्ट्र को भावनात्मक एवं सांस्कृतिक बंधन में बांध, स्वतंत्रता के दरवाजे तक पहुँचाया।

भारत की स्वतंत्रता के साथ–साथ हिन्दी को भी संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा के पद आसीन करने का श्री गणेश हुआ किन्तु पाकिस्तान के बंटवारे के बाद प्रतिरोधी स्वर मुखर हो गये। परिणामतः हिन्दी को 'राजभाषा' के पद पर आसीन होना पड़ा। हिन्दी का 'राजभाषा' पद पर आसीन होने से यह स्पष्ट है कि राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र की एकता में उसके महत्त्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता भले ही कुछ राजनीतिक कुचक्रों के कारण उसे राष्ट्रभाषा से वंचित किया गया जिसकी कसक एक राष्ट्र के रूप में–एक से विधान, एक ध्वज, एक राष्ट्रीय चिन्ह, एक राष्ट्रीय गीत, एक राष्ट्रपति और एक संसद और सर्वोच्च न्यायालय के साथ एक भाषा की उपेक्षा, में अनुभव होता है। लेकिन राजभाषा के पद पर आसीन होने वाली हिन्दी से निम्नलिखित अपेक्षायें की गईं–

1. संघ की भाषा के रूप में समस्त सरकारी प्रयोजनों के लिए विविध मंत्रालयों में संयोजन की कड़ी बनेगी।
2. राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की संयाजिका होगा।
3. ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में विश्व की उपलब्धियों का आकलन करने वाली होगी।
4. भारतीय सामसिक संस्कृति के शिक्षण और सम्प्रेषण की भाषा बनेगी।

उपर्युक्त अपेक्षायें भाषा के माध्यम से भारत को एक सूत्र में बांधने वाली योजनाएं थी। जिसमें हिन्दी पूरी तरह सफल है। हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रस्तावित करने वाले विद्वानों में हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अतिरिक्त डॉ. गोपाल स्वामी अयंगर (तमिल), श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी (गुजरात) द्वारा प्रस्तावित करना, हिन्दी के राष्ट्रीय चरित्र और उपादेयता का बोध कराता है।

राजभाषा अधिनियम के अनुच्छेद 351 में

[9]. हिन्दी राष्ट्र की अस्मिता, सं0 रमेश दवे, श्री कैलाश चन्द्र पंत अमृत महोत्सव समिति, भोपाल, 2011, पृ0 68

हिन्दी के समन्वित एवं उदार चरित्र को सुदृढ़ करने के लिए प्रावधान किया गया कि–''संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसाद बढ़ाए, उसका विकास करे, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विर्निष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।''[10] इससे हिन्दी के राष्ट्रीय–एक्य के चरित्र को संबल प्राप्त हुआ।

हिन्दी भाषा ने इसे अंगीकार किया और नए कलेवर में ढलकर आज उसने साहित्य, संस्कृति, सृजन एवं बोलचाल की भाषा के साथ–साथ ज्ञान–विज्ञान, संचार, तकनीकि एवं कामकाज की भाषा के रूप में अपना विशिष्ट स्वरूप बनाया है।

आज भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ अर्थ एवं बाजार हावी है, वहाँ भी हिन्दी ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। अपनी जनसंख्या के आधार पर वह बाजार का प्रमुख आकर्षण है। जिससे रोजगार के अनेक अवसर हिन्दी में विकसित हुए हैं। भारत के प्रमुख अखबारों में शुरुआती कुछ हिन्दी के हैं। भारत में 45 प्रतिशत हिस्सेदारी सिनेमा के क्षेत्र में हिन्दी सिनेमा की है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के विज्ञापनों में 70 प्रतिशत हिस्सेदारी हिन्दी विज्ञापन की है। 229 रेडियो केन्द्र, 338 एफ.एम. चैनल के साथ–साथ विदेशों में टी.वी. एवं रेडियो चैनल चल रहे हैं। हिन्दी रेडियो की पहुँच 91.79 प्रतिशत तक है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी हिन्दी ने अपनी उपस्थिति तीव्रता के साथ दर्ज करायी है।

वर्तमान में जो सीमावर्ती विवाद, क्षेत्रीयतापूर्ण राजनीति, सांप्रदायिक विद्वेष, मूल्यहीनता, आतंकवाद जैसे कुचक्रों से लड़ने में हिन्दी के साहित्यकार, हिन्दी फिल्में, हिन्दी धारावाहिक एवं अन्य दूरदर्शन के कार्यक्रम अपनी महती भूमिका निभाकर राष्ट्र को एकीकृत करने में स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं। रोजगार के क्षेत्र में हिन्दी–भाषी के लिए अनेक अवसर हैं, जिससे राष्ट्र में सामाजिक एवं सामासिक संस्कृति विकसित करने में हिन्दी अहम् भूमिका निर्वाह कर रही है।

भाषा के संदर्भ में माननीय मोदी जी का कथन उद्धृत करना समीचीन होगा–भाषा का अगर डी.एन.ए . टेस्ट किया जाए जो एक बड़ी चीज हाथ लगेगी कि इसका हृदय बहुत ही विशाल होता है। भाषा को किसी का बंधन नहीं होता। न रंग का बंधन, न काल का बंधन, न क्षेत्र का बंधन। हर किसी को अपने में समाहित कर लेती है। हिन्दी के सामूहिक भाव में यही समरसता है। अतः हिन्दी युग–युग तक भारत की राष्ट्रीय एकता की संवाहक रहेगी।

प्रोफेसर,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

[10] https://rajbhasha.gov.in/hi/constitutional_provisions

2

राजभाषा हिन्दी बनाम जनभाषा हिन्दी

डॉ. प्रकाश उदय

जनभाषा हिन्दी और राजभाषा हिन्दी में एक अन्तर तो यह है कि हिन्दी जनभाषा 'है', राजभाषा यह 'बनी है'। बनी भी नहीं है, 'बनाई गई है'। बनी तो फिर भी नहीं है, पूरे मन से, इसलिए कि पूरे मन से शायद बनाई भी नहीं गई है, लेकिन उसकी बात बाद में, अभी उसकी बात जो हिन्दी बिना किसी किन्तु-परन्तु के है। जनभाषा। जो कि वह किसी संवैधानिक जिक्र के बिना भी है।[1] सच तो यह है कि हिन्दी का ही नहीं, किसी भी भाषा का जीवितमात्र होना ही उसके जनभाषा होने के लिए काफी से कहीं ज्यादा है। इस लिहाज से हिन्दी, सिर्फ और सिर्फ 'हिन्दी' कही जाकर भी जनभाषा है, लेकिन राजभाषा कहने के लिए उसे 'राजभाषा हिन्दी' कहना जरूरी है शायद। फिर भी कोई राजभाषा हिन्दी कर के हिन्दी है, इससे बेहतर किस्म की बात है यह, कि कहें कि हिन्दी राजभाषा है। हालाँकि हिन्दी के राजभाषा होने में कोई संशय जरूर है जो इसे अलग से 'राजभाषा हिन्दी' कहने को उकसाता है। संभव है कि इसी संशय की छूत उसके जनभाषा होने को भी लग गई हो, जिसके चलते उसे जनभाषा हिन्दी कहना भी, जितना विचित्र है, उतना रह नहीं गया है। विचित्र तो यह भी है, लेकिन है तो है, कि हिन्दी के राजभाषा होने ने उसके जनभाषा होने को, और उसके जनभाषा होने ने उसके राजभाषा होने को एक चुनौती-सी दे रखी है। इसके नौ नतीजों में से एक यह भी है कि अब "हिंदी शब्द का राजकाज में नाम भी नहीं लिया जाता, उसे 'ऑफिसियल लिंक लैंग्वेज', सरकारी संपर्क भाषा कहा जाता है, मानो जनता से उसका कोई संबंध ही न रहा हो, न होने वाला हो।"[2]

हिन्दी के साथ लगा हर विशेषण, चाहे वह राजभाषा हो या जनभाषा, हिन्दी के लिए निर्भ्रांत रूप से घाटे का सौदा है, लेकिन इससे भी इन्कार का कोई मतलब नहीं रह गया है कि घाटे के हों या मुनाफे के, ये विशेषण अब हिन्दी के मत्थे लगभग मढ़े जा चुके हैं। ऐसे में इनकी तरफ से सकारात्मक तरीके से कुछ सोचना भी बनता तो है ही। हिन्दी, एक खास तरह से, खास तवज्जो के साथ 'जनभाषा' कही जाए, ऐसी है भी। इसलिए कि इसकी एक बड़ी भूमिका स्वतंत्रता-आंदोलन को 'जन'-आंदोलन में बदलने में रही है। गांधी जी और सुभाषचंद्र बोस जैसे अनेक इतर भाषा-भाषी नेताओं ने इसके 'जन'-जागरण और 'जन'-संवाद-सामर्थ्य की पहचान की थी। हालाँकि, लगता नहीं कि देश में 'जन'-तंत्र लाने वाली भाषा के बतौर इसे 'जन'-भाषा कहने का कोई रिवाज चला हो, लेकिन हो सकता है कि किसी गुपचुप तरीके से ऐसा हो भी। तरीके से तो राजतंत्र के साथ ही 'राज'-भाषा जैसी अवधारणा को भी विदा हो लेना चाहिए था, जनतंत्र के लिए, वैसे भी, राजभाषा की तुलना में 'जन'-भाषा संबोधन जरा ज्यादा मुफीद तो है ही। लेकिन, जनभाषा तो इस देश की हर चलती भाषा है, हर भाषा के अपने जन हैं, और आजादी की लड़ाई में भी, भला किस भाषा की, किस भाषा के जन की भूमिका से इन्कार किया जा सकता है ! ऐसे में सवाल यह है कि हिन्दी की स्थिति उनसे अलग क्या है, कैसे है? वह सिर्फ ऐसे है कि जो भोजपुरी जन हैं, जो अपने

जन से भोजपुरी में बतियाते हैं, और जो गढ़वाली जन हैं, जो अपने जन से गढ़वाली में बतियाते हैं वे भोजपुरी और गढ़वाली जन एक-दूसरे से देश की जिस भाषा में बतियाते हैं, बतियाऽ सकते हैं, वह हिन्दी ही है। वह भारत की कई जनभाषाओं के संवाद-परस्पर की भाषा के तौर पर जनभाषा है। वह जनभाषा, जो देश के किसी भिन्न भाषा-भाषी को देश के किसी भिन्न भाषाभाषी समूह में भिन्न होने, विजन में होने के अहसास से बचाती है, बचा सकती है। हिन्दी ने अपने इस सामर्थ्य को एक हद तक हिन्दी-परिवार के बाहर की भाषाओं के बीच भी साबित किया है। किसी पंजाबी-भाषी और किसी गुजराती-भाषी के संवाद-परस्पर की भी सर्वाधिक सहज-संभव भाषा हिन्दी ही है, और अगर नहीं भी है तो वही हो सकती है। यह जरूर है कि दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच की भाषा बनने की क्षमता हिन्दी ने अभी अर्जित नहीं की है, लेकिन ऐसा भी नहीं कि उस दिशा में उसके कदम बढ़े ही नहीं हैं, और यह तो तय है कि उस क्षमता को अर्जित करने की क्षमता अगर किसी भारतीय भाषा में है, तो वह सिर्फ और सिर्फ हिन्दी है।[3] हालाँकि उसके पीछे कुछेक लेकिन जरूर लगे हैं। उन लेकिनों को समझने के लिए इस हिन्दी को इसके राजभाषा वाले सिरे से समझने की कोशिश करते हैं।

हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया तो उसके पीछे यह वजह तो थी नहीं कि वह अन्य भारतीय भाषाओं से अधिक साहित्य-संपन्न भाषा है। इस मामले में दूसरी कई भारतीय भाषाएँ उससे, तब तो थीं ही, आज भी आगे हैं। वह सबसे बड़े भूभाग और सबसे बड़ी जनसंख्या की भाषा है, यह एक वजह संभव है कि हो। इसकी संभावना इसलिए भी ज्यादा है कि इस बड़े भूभाग और बड़ी जनसंख्या के चलते उसे राजभाषा ही कहा गया, राष्ट्रभाषा नहीं कहा गया, क्योंकि भारत के समस्त भूभाग और समस्त जनसंख्या की भाषा वह तब तो नहीं ही थी, अब भी नहीं है। लेकिन, जो बड़ा वाला भूभाग और बड़ी वाली जनसंख्या हिन्दी की कही जाती है वह भी दरअसल दूसरी-दूसरी भाषाओं का भूभाग है, दूसरी-दूसरी भाषाओं की जनसंख्या है, यह भी सच है। मेरठ के आसपास की कौरवी या सरहिन्दी का आधार लेकर विकसी हिन्दी की विकास-यात्रा में उसकी आधार-भाषा के रूप में दूसरी भी बहुतेरी भाषाएँ जुड़ती गई हैं और इसके चलते एक सच तो यह है कि आज हिन्दी जिस रूप में है उस रूप में सिर्फ कौरवी का भाषा-भूगोल ही उसका अपना नहीं रह गया है, दूसरा सच यह है कि कौरवी का भाषा-भूगोल भी उसका अपना नहीं रह गया है, वहाँ की भी पहली भाषा, मातृभाषा वह नहीं है। ऐसे में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देने का एक आधार तो यह है कि वह देश की इकलौती भाषा है जो कहीं की मातृभाषा नहीं है, पहली भाषा नहीं है[4], और इस नाते देश की दूसरी किसी भाषा से इसकी कोई होड़ नहीं है, दूसरी वजह यह है कि दूसरी भाषा के रूप में जितनी जमीन और जितनी जनसंख्या हिन्दी के पास है उतनी दूसरी किसी भारतीय भाषा के पास नहीं है। हो सकता है कि अधिक-से-अधिक भाषाओं के लोगों को एक-दूसरे से जोड़ने की जो अनन्य भूमिका हिन्दी ने स्वतंत्रता-संग्राम के 1850-57 से 1942-47 के दौर में निभाई थी, उसी के आभार-प्रदर्शन के रूप में उसे राजभाषा का दर्जा दे दिया गया हो, इस भरोसे के साथ कि हिन्दी अपनी इस भूमिका को आगे भी निभाएगी, भरसक विस्तार भी देगी। यह तो दिखता है कि जिस दक्षिण भारत से हिन्दी नहीं बतिया पाती थी, और उससे बतियाने की भाषा संस्कृत के बजाय अंग्रेजी हो चली थी, उस अंग्रेजी को भी 15 बरस के लिए हिन्दी के साथ लगा लिया गया, इस उम्मीद में शायद कि इतने बरसों में हिन्दी उधर से भी अपने बल पर बतियाने की बेंवत बना लेगी।[5]

लेकिन काश कि ऐसा होता! सच तो यह है कि

एक जनभाषा को हमने, चाहे जिस उत्साह में, राजभाषा बना तो लिया, लेकिन हम जानते थे कि आजादी हासिल कर लेने के बावजूद हमने व्यवस्था नहीं बदली है, व्यवस्था जो अंग्रेजों ने बनाई थी, वही हमने ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली है, और वह जो अंग्रेजों की बनाई व्यवस्था है, वह जाहिर है कि अंग्रेजी के हिसाब से है, हिन्दी के हिसाब से नहीं है, वह अंग्रेजी से ही चलेगी, अंग्रेजों और अंग्रेजी से लड़ती रहने की आदती हो चली हिन्दी से वह चलेगी नहीं। इसलिए अंग्रेजी को राज-काज में रखे रहने की मजबूरी कुछ-कुछ वैसी ही थी जैसी आजादी के बाद भी कुछ काल तक अंग्रेज वायसराय को उसके पद पर बनाए रखने की मजबूरी थी। राज-काज में 15 साल अंग्रेजी के साथ के जो निर्धारित किए गए थे, हम जानते हैं कि आज तक वे पूरे नहीं हुए। पूरे नहीं हुए तो इसलिए कि इन 15 वर्षों को हमने व्यवस्था को धीरे-धीरे हिन्दी के हिसाब से, जिसका मतलब है कि हिन्द के हिसाब से, हिन्दुस्तान के हिसाब से, बदलने में नहीं खर्च किया, हमने उसे हिन्दी को ही व्यवस्था के हिसाब से बदलने में खर्च किया। और क्या-क्या किया हमने इस हिन्दी को राजभाषा के लायक बनाने के लिए, कितना-कितना, इसका अगर लेखा-जोखा सामने रखें, कितने आयोग, कितने विभाग, कितने अधिकारी, कितनी प्रतियोगिताएँ, कितने अनुवाद, कितनी किताबें, कितने पुरस्कार तो एक पहाड़ खड़ा हो जाए। उस पहाड़ को खोदें तो उम्मीद करनी चाहिए कि कुछ तो निकलेगा ही, वह 'नाकामी' ही क्यों न हो ! हिन्दी आजतक अकेले दम राज-काज के लायक नहीं हो पाई। 15 साल के लिए साथ लगाई गई अंग्रेजी बेचारी को आज तक उसे ढोना पड़ रहा है! वह हिन्दी की हिन्दी ही रह गई, अंग्रेजी नहीं हो पाई। हमने जो तय किया था कि जमीन पर रह कर तैरना सीख लेगी तभी इस हिन्दी को पानी में उतारेंगे, दुर्भाग्य से वह हो नहीं पाया। जितने गौर से उसे किनारे खड़े होकर अंग्रेजी के पानी में तैरने के तरीकों को देखना और समझना चाहिए था, उतने गौर से वह देख नहीं पाई, उतनी गहराई से समझ नहीं पाई। ऊँचे दर्जे की कचहरियों और ऊँचे दर्जे की पढ़ाइयों को तो खैर, पहले ही दिन से पता था, लेकिन अच्छी बात यह हुई कि इन 70-75 वर्षों में इस देश के आम आदमी तक भी यह बात लगभग पहुँच गई कि हिन्दी एक ना-लायक भाषा है, जब खुद उसे ढंग से कुछ सीखने नहीं आता, तो उसे सीखने से भला क्या होना, क्या पाना !

कोई यह कहे कि हिन्दी अपने दम आज तक राजभाषा नहीं हुई, यह हमारी विफलता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि हमलोगों ने सचमुच यह सोच लिया था कि कुछ सरकारी इमदादों से, कुछ अफसरीय और विद्वत्प्रयत्नों से राजकाजी हिन्दी के रूप में एक नई भाषा बनाई जा सकती है, और अगर ऐसा है तो इसका एक मतलब यह भी हुआ कि हम उस देश के हैं ही नहीं, जिस देश को पाणिनि-पतंजलि-भर्तृहरि-कात्यायन जैसे भाषा-विमर्शकारों के साथ जीने का गौरव हासिल है। भाषा को लेकर भला इतना विज्ञान-विरुद्ध हम सोच भी कैसे सकते हैं! ऐसे में कुछ अच्छा-अच्छा सोचने की कोशिश करते हैं। हम मान लेते हैं कि आजादी पाने के दौर में राष्ट्रभक्ति के नशे में चूर हम हिन्दुस्तानियों पर राष्ट्रभाषा का एक खुमार जो चढ़ा था, उसे सहलाने भर के लिए ही हमने हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दे दिया था, और उस नशे और खुमार को उतारने के लिए ही उसके साथ अंग्रेजी को भी जोड़ दिया था। अब अगर हम यह समझते हैं कि हमारे लोगों ने इस हिन्दी को एक नए रूप में, राजभाषिक स्वरूप में ढालने के लिए 15 वर्षों का समय लिया था, और इस तरह भाषा के विज्ञान के विरोध में जाकर कोई संकल्प ले लिया था, तो हम गलत समझते हैं। हमने इसका दिखावा भर किया था क्योंकि इसका दिखावा ही किया जा सकता था। 15 वर्ष वस्तुतः हमने इसलिए लिए थे कि जनता की

भाषा जनता के लिए है, सत्ता के लिए नहीं है, इसे लोग, भले ही 15 वर्ष लग जाएँ, लेकिन बिना समझाए समझ जाएँ। और इस तरह, हमने धर्म के नाम पर अभी-अभी खून से नहाए इस देश को, दरअसल, भाषा के नाम पर एक और रक्त-स्नान से बचाया भी, यह श्रेय भी ले सकते हैं। हिन्दी को राजभाषा बनाकर हिन्दी को लेकर जरूरत से ज्यादा ही कुछ हम हुलसितों को और उसके साथ ही अंग्रेजी को रख कर, हिन्दी से उतना नहीं जितना हमारे हुलास से झुलसितों को भी, एक तो चुप करा दिया गया था, और दूसरे, सत्ता के पूर्ववत सुचारु संचालन का जुगाड़ भी जुटा लिया गया था। हमारी विफलता यह नहीं है कि हम 15 क्या, 70-75 बरस लगाकर भी हिन्दी को राजकाज के लायक नहीं बना पाए, हमारी विफलता यह है कि उसके राजकाज के नाकाबिल होने की बात अपनी जनता को बिना समझाए समझाने में हमें दस क्या, 70-75 बरस लग गए, और तब भी बात अभी पूरी तरह से बनी नहीं है, इतनी ही बनी है कि आज जब अपने कुछ प्राथमिक माध्यमिक सरकारी स्कूलों को हम माँडल स्कूल बनाने के नाम पर अंग्रेजी स्कूल बनाने की तैयारी कर रहे हैं, तो कहीं से किसी के झनकने-पटकने की आवाज नहीं आ रही है। हमें उम्मीद रखनी चाहिए कि जैसे हमारे सिनेमा के सुपरस्टारों को यह समझ आ गई है कि हिन्दी महज पर्दे पर डायलॉगबाजी के-लिए और के-लायक ही है, वह भी रोमन में लिखी हिन्दी, व्यूज और इंटरव्यूज के-लिए भी और के-लायक भी, अंग्रेजी ही है; वैसे ही हमारे सत्ताधारी भी, समझते तो खैर हैं ही, लेकिन आज नहीं तो कल, थोड़ी हिम्मत भी करेंगे और कुबूल भी करेंगे, खुलेआम, कि हिन्दी जनता से महज वोट माँगने के लिए और लायक तो है, उसपर राज करने के लिए और लायक वह नहीं ही है, यह एक बात, और दूसरी बात कि उसके लिए भी और उसके लायक भी अंग्रेजी ही है, इसलिए कि उसे राज करने का अनुभव है, यह एक बात, और दूसरी बात कि खास हम पर, हमारे लोगों पर राज करने का अनुभव है। एक तीसरी बात भी है, जिसकी पहले भी चर्चा आई है, कि जो राज हम चला रहे हैं, वह वही वाला है लगभग, आज भी, जो अंग्रेज चला रहे थे। विद्यालय होकर भी स्कूल स्कूल ही रहे, उनकी वही पढ़ाइयाँ हैं, कचहरियों की वही सुनवाइयाँ हैं, दरोगाजियों से मिलने वाली वही रुसवाइयाँ हैं। जो हमारे अंग्रेज हाकिमों ने चलाया, उनके चले जाने पर भी अगर वही चल रहा है, तो उसके लायक अंग्रेजी ही है, यह भी तय है, और हिन्दी नहीं है उसके लायक, यह भी तय है। ऐसे में हमें धैर्यपूर्वक और विश्वासपूर्वक उस दिन का इन्तजार करना चाहिए जिस दिन हिन्दी को राजभाषा न होते हुए भी राजभाषा हुए रहने की और राजभाषा होते हुए भी राजभाषा न होने की दुहरी साँसत से मुक्ति मिलेगी।

ऐसा जिस दिन होगा वही दिन हिन्दी का असली हिन्दी दिवस होगा। उस दिन गुमान से कहा जा सकेगा कि हिन्दी ने उस भूमिका में आने से इन्कार कर दिया जिस भूमिका में आकर फारसी और अंग्रेजी ने एक तरह से यह तय कर दिया था कि सत्ता की भाषा जनता की भाषा से भिन्न होती है या होनी चाहिए। कि हिन्दी ने जनभाषा से भिन्न किसी राजभाषा में ढलने से इन्कार कर दिया। कि "हिन्दी की शक्ति साधारण जन हैं"।[6] दुर्भाग्य यह है कि यह भी नहीं होने का, इसलिए कि भारत में अंग्रेजी के भव्य भवन के निरापद निर्माण के लिए हिन्दी की ओट एक जरूरी जरूरत के तौर पर पहचान ली गई है। उसका बने रहना अंग्रेजी के तने रहने के लिए जरूरी है। भय दरअसल यह है कि हिन्दी को राजभाषा के जिस सिंहासन पर बिठा दिया गया है उससे उतारते ही एक तो कि वह फिर से अपने देश के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों को जोड़ने की अपनी पुरानी भूमिका में उसी जोर-शोर से लग जाएगी, दूसरे, कि हिन्दी- हितैषियों

का अभी चैन से सोया पड़ा हिन्दी-प्रेम फिर से भड़क उठेगा। अब, भड़के हुए प्रेम से कोई किसी के भले की उम्मीद तो नहीं ही रखे ! वैसे भी, हिन्दी की ऐसी-तैसियों को तय करने में जितनी जोरदार भूमिका हिन्दी के हितैषियों की रही है, उतनी न तो उन अंग्रेजों की रही है, जो बेचारे चले गए, न उस अंग्रेजी बेचारी की रही है, जिसे वे जितना ले गए उससे कहीं ज्यादा छोड़ गए। उदाहरण के लिए, जो सबसे उल्लेखनीय कार्य किया हमारे हिन्दी-हितैषियों ने, अपने प्रेम-मद में, वह यह कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाम की इस भाषा के लिए जो भाषा-भूगोल प्रस्तावित किया गया था, समूचा हिन्द या समूचा हिन्दुस्तान, उसे उससे छीन लिया। अपने अतिरिक्त, कि तो अति से कुछ अधिक ही रिक्त अपने उत्साह में उन्होंने अपनी-अपनी मातृभाषाओं -- मगही, मेवाड़ी, मेवाती, अवधी, कुमाउँनी वगैरह-- के भूगोल को अपनी मातृभाषाओं से छीन कर हिन्दी के नाम लिख दिया। इससे यह तो हुआ कि बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान वगैरह का एक मिला-जुला बहुत बड़ा भूगोल हिन्दी का अपना कहने को हो गया, लेकिन यह भी हो गया कि मराठी, बंगला, तमिल, तेलुगु की जमीन उसके लिए पराई हो गई। हिन्द का एक बड़ा हिस्सा उसका हो गया, लेकिन वह पूरा-का-पूरा हिन्द, जिसे उसका होना था; जो उसका हो, इसके लिए बड़े अरमान से गांधी जी ने, प्रेमचंद ने, उसे साफ-साफ 'हिन्दुस्तानी' कहना पसंद किया था[7], वह उसका होने से रह गया। हिन्दी के पक्ष में होने की होड़ में हिन्दी-हितैषियों ने खुद ही उसका एक विपक्ष रच दिया। हिन्दी का हित अपनी-अपनी मातृभाषाओं का रहते हुए ही हिन्दी का होने में है, इसे दरकिनार करते हुए हमने यह जो किया कि य्ये छोड़ी अपनी भोजपुरी और हिन्दी के हो लिए, य्ये छोड़ी अपनी ब्रजभाषा और हिन्दी के हो लिए, उसने उन सबके लिए हिन्दी का होना असंभव कर दिया, जिनका हमारे जैसा मातृहंता मन नहीं था, जिनके लिए मातृभाषाओं से छूटना अपनी माँओं से छूटने जैसा था। तो जो है सो तो यही है कि हिन्दी राजभाषा है भी और नहीं भी है। व्यवस्था जितना भर हिन्दुस्तानी किस्म की हो पाई है, उतना भर तो है ही। जितना भर अंग्रेजी वाक्य-विन्यास और शब्द-संपदा को हिन्दी अपने में खपाऽ पाई है, उतना भर भी है। और, पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की हमारी कोशिशों ने उसे बदरंग अगर किया है कुछ, तो कुछ तो रंग भी भरे ही हैं। इस दिशा में 'दम लगाकर हइसा' कर के गाड़ी अगर ठेल दी गई है, तो कुछ दूर, कुछ देर तक तो वह ठिली रहनेवाली है ही। उधर, बाजार-व्यापार की जरूरतों ने, मनोरंजन उद्योग ने तो विशेषतः, हिन्दी को अपने हिसाब से पसारा भी है और वह पसरी भी है, इधर हिन्दी की ओट में चल रही अंग्रेजी की बढ़न्ती अब डिठार भी धड़ल्ले से है और होती ही रहेगी, यह भी तय ही है। यह बुरा भी नहीं है, बल्कि अच्छा ही है, जो नहीं अच्छा है वह इतना ही केवल कि यह बढ़न्ती न सिर्फ हिन्दी बल्कि तमाम भारतीय भाषाओं की कीमत पर होने-होने को हुई जा रही है। उधर सत्ता के गलियारे में भी हिन्दी-विरोध ने एक मुकाम हासिल कर लिया है और उसे डिगा पाना अब बहुत आसान नहीं है। समूचे हिन्दी देश के बजाय एक आधा-तिहा हिन्दी प्रदेश और सारे-के-सारे हिन्दुस्तानियों के बजाय एक आधा-तिहा हिन्दी जाति की अवधारणा अगर बन गई है, तो इतनी आसानी से बिगड़ने वाली तो है नहीं। कहीं-की-पहली-भाषा-नहीं और इस नाते देश-भर-की-दूसरी-भाषा-हो-सकने-लायक हिन्दी अगर कई-कई कहीं-कहीं की पहली भाषा करार दी गई है तो इस करार को तोड़ पाना कठिन तो है ही। लेकिन ऐसा भी नहीं कि मिथिला ने अगर आठवीं अनुसूची के जरिए अपनी मैथिली को अपनी पहली भाषा के तौर पर देश के सामने रख दिया है और भोजपुरी, राजस्थानी आदि के लिए

इसके प्रयास चल रहे हैं, तो हिन्दी पर किसी खास इलाके का होने का जो आरोप है, उस पर इसका कोई असर नहीं होगा। असर भी होगा, भले ही देर-सबेर, और उम्मीद तो रखनी ही चाहिए कि जैसे-जैसे हिन्दी के बताए जाने वाले इलाकों की अपनी भाषाएँ--पहली वाली भाषाएँ, मातृभाषाएँ, निजभाषाएँ--अपनी-अपनी साहित्य-संपन्नता के साथ अपने को स्थापित करती जाएँगी, वैसे-वैसे हिन्दी ज्यादा-से-ज्यादा हिन्दुस्तान की दूसरी वाली अपनी भाषा होती जाएगी और उसके नाहक किस्म के विरोध की तल्खी भी कम पड़ती जाएगी। तब इस देश की बहुभाषिकता की फीकी पड़ती जा रही चमक भी नए सिरे से निखरेगी और इन बहुभाषाओं को एक सूत्र में पिरो सकने वाली एकभाषिकता की भी, हिन्दी की भी। हिन्दी हमारे लिए हमारी मातृभाषा से भिन्न एक भाषा है, इस समझ के साथ ही, संभव है कि यह समझ भी आए कि हिन्दी हम कथित हिन्दी वालों के लिए भी सीखने की भाषा है, और तब, उसे मातृभाषा मान कर 'वह-हमें-आती-ही-है' का जो भरम बैठ गया है हमारी विशेषतः विद्यार्थी-बिरादरी में, वह भी कुछ हटे-कटे। तब यह भी संभव है कि इस दूसरी भाषा को सीखने में हमें अपनी पहली भाषा को खर्च करने की तमीज आए, मातृभाषा से काम लेने तक में हमारी जो लज्जाजनक ही नहीं, जीवनविरोधी भी, झिझक है, वह भी मिटे, मातृभाषा के काम आने का भी उत्साह जगे, उसकी बारीकियों में उतरें और तब जाहिर है कि उसके जरिए सीखी गई हमारी हिन्दी भी हिन्दी होगी, केवल कहने को हिन्दी नहीं होगी, अंग्रेजी भी अंग्रेजी होगी, केवल कहने को अंग्रेजी नहीं होगी।

अभी तो यह हाल है कि हम जो हिन्दी वाले कहे जाते हैं, उनके पास अपनी एक भूली-बिसरी, और बहुत कुछ भुलाई-बिसारी मातृभाषा है, एक हमें-आती-ही-है के नाते अनसीखी हिन्दी है और एक, इन अनयाद-अनसीखी भाषाओं के जरिए ही जितनी सीखी जा सकी उतनी गिटपिट भर की ही अंग्रेजी है और बेशक, इन सबकी मिली-जुली एक खिचड़ी भाषा भी है। तो जो है सो सब कामचलाऊ है। अनायास नहीं है कि हमारा विरोध, हमारा समर्थन, हमारा सब कुछ कामचलाऊपन का, चलताऊपन का शिकार हुआ जा रहा है, अनजाने ही, हम भाषाहीनता की दिशा में बहे जा रहे हैं, चुप रहने की जगह चिल्लाने लगे हैं, चिल्लाने की जगह चुप रहने लगे हैं, बतियाने की जगह गरियाने लगे हैं, गरियाने की जगह गुनगुनाने लगे हैं। ऐसे में, हमारे लिए, अब सवाल राजभाषा या जनभाषा का उतना नहीं रह गया है, हिन्दी और अंग्रेजी का भी उतना नहीं रह गया है जितना भाषामात्र का हो गया है। यह सवाल हमारे सामने बेशक जरा ज्यादा ही चुभंत अंदाज में खड़ा है, लेकिन खड़ा यह पूरे देश के सामने है। कहीं इसलिए भी कि हिन्दी नीचे दिखने लगी है, कहीं इसलिए भी कि हिन्दी को नीचा दिखाना है। ऐसा भी नहीं कि इस सामने खड़े सवाल का हम सामना नहीं कर रहे हैं, कर रहे हैं, और खुद यह विमर्श भी प्रकारान्तर से उसी भिड़न्त का एक हिस्सा है, लेकिन ठेठ भारतीय संदर्भ में, इस भिड़न्त के लिए, एक बार देखना तो चाहिए ही कि हमारे पुरखे हमारी गठरी में क्या-कुछ सहयोग-सामग्री रख गए हैं। एक तो मातृभाषा ही है। हर सवाल का सबसे सटीक जवाब। वैसे ही जैसे माँ। और माँ हमेशा कोख में ही नहीं रखती, गोद में भी लेती है, और गोद में ही नहीं रखती, धरती पर उतार भी देती है। तो जो दूसरा है हमारी गठरी में, वह है मातृभाषा से बाहर की दुनिया में पग धरना, हर तलमलाने पर माँ की अँगुली पकड़ लेने के भाव और भरोसे के साथ। भारत-भावित एक तीसरी बात जो है हमारे पास वह यह कि एक ही माँ नहीं है हमें पालने वाली, दादी माँ भी है, नानी माँ भी है और गंगा से लेकर गाय तक माँएँ-ही-माँएँ हैं। कि किसी भाषा को कमतर कर के

जानना किसी-न-किसी माँ को, किसी-न-किसी की माँ को कमतर कर के जानना है। भाषाओं के अपने इतिहास को याद करें तो इस मामले में द्वैमातुर तो हम कम-से-कम रहे ही हैं। दो भाषाएँ तो कम-से-कम रही हैं हमारे पास। जनभाषा और राजभाषा के रूप में नहीं, जनभाषा और ज्ञानभाषा के रूप में। जनभाषा हुई व्यवहार की भाषा, चलती भाषा और ज्ञानभाषा प्रयत्नपूर्वक अपेक्षाकृत थिर रखी गई भाषा, कि भाषा के परिवर्तन का प्रवाह ज्ञान की संचित राशि से वंचित न कर दे। संस्कृत इसी नाते इस देश की एक जरूरी जरूरत है। कुछ लोगों को यह साबित करने में एक रसातली किस्म की तृप्ति जरूर मिलती है कि संस्कृत एक मरी हुई भाषा है, लेकिन सचाई यह है कि इस देश से होकर गुजरे भयावह से भयावह झंझावातों में भी वह, निष्कंप, खड़ी-की-खड़ी रह गई भाषा है। उसने भरसक थिर रह कर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की भी ज्ञान-संपदा को यथासंभव संचित किया है, और विश्वास रखना चाहिए कि परायों से अपराजित रही संस्कृत अपनों की उपेक्षा से त्रस्तप्राय हो जाने के बावजूद अंत-पंत आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अर्जन-सर्जन को भी यथासंभव सँचेगी ही। बहुत संभव है कि ऐसा भी समय कोई आए जब विश्वमनीषा को दुनिया भर की तमाम भाषाओं से अर्जित ज्ञान-राशि के संचयन में इस स्थैर्यप्राप्त संस्कृत का सदुपयोग सूझे। ईश्वर करे कि उसे सूझे, उसके पहले हमें सूझे।

जब तक नहीं सूझता तब तक यह दायित्व हिन्दी का है। ज्ञान-संचयन का। सृजन-संचयन का। देश की हरेक भाषा से। सब के सब में सब को साझीदार बना लेने का सामर्थ्य ही उसका अपना सामर्थ्य है। वह मलयालम में अर्जित और सर्जित समझ और साहित्य उड़िया को सौंपने में समर्थ है और यही उसका दायित्व है, इसी में उसकी सार्थकता है। व्यक्ति या संस्था, किसी को, अगर सचमुच हिन्दी के लिए कुछ करना है तो उसे प्रशासनिक या व्यावहारिक या प्रयोजनमूलक बनाने के अंदेशे में दुबले होने के बजाय देश की हर भाषा की हर महत्त्वपूर्ण कृति को, चाहे वह जिस संदर्भ की हो, अनिवार्य रूप से हिन्दी में लाने के जतन में लगना है। यही देश का देश तक पहुँचना है, यही देश को देश तक पहुँचाना है, और हिन्दी की सार्थकता और महत्ता इसी का जरिया बनने में है। देश के जन-जन तक जाने का और उनके लिए, उनकी जरूरतों के मुताबिक दुनिया भर से चुन-बीन-धो-पोंछ कर ढो-ढाकर लाने का और दुनिया भर के लिए, उसकी जरूरत के मुताबिक यहाँ से वहाँ ले जाने का जरिया बनने में। राजभाषा बनने से बड़ा काम है यह, और बड़े मन से ही यह होना है, गड़े मन से तो नहीं ही होना है। हिन्दी के लिए भारतेन्दु अपने और बाला सुब्रह्मण्यम पराए नहीं हैं। भारतेन्दु उसके भोजपुरी वाले अपने हैं, बाला सुब्रह्मण्यम तमिल वाले अपने हैं। हिन्दी अगर हिन्दी है तो वह पूरे हिन्द की हो, किसी हिन्दी कहे जाने वाले इलाके भर की न हो, वह इलाका चाहे जितना बड़ा हो। यह सच है कि जब तक अंग्रेजी उसके साथ लगी है, या सही-सही कहें तो जब तक वह अंग्रेजी के साथ लगी है, तब तक मुकम्मल तौर पर राजभाषा होकर भी नहीं है, लेकिन यह चिन्ता की बात हर्गिज नहीं है, चिन्ता की बात यह है कि वह हिन्दी होकर भी पूरे हिन्द की अभी नहीं हो पाई है, और इस नाते, वह जनभाषा है जरूर, लेकिन मुकम्मल तौर पर नहीं है, जितना उसे होना चाहिए उतनी जनभाषा वह अभी नहीं है, जितने जन की भाषा उसे होना चाहिए उतने जन की भाषा वह अभी भी नहीं है। इसके लिए जो प्राथमिक प्रकार की कोशिशें थीं, हिन्दी के पाठ्यक्रम में किसी विश्व-विद्यालय में कुछ तमिल, किसी में कुछ तेलुगु, किसी में कुछ बांग्ला वगैरह को शामिल करने की, वह भी नहीं हुआ, मलयालम के पाठ्यक्रम में कहीं कुछ हिन्दी भी शामिल हो, यह तो खैर, बहुत दूर की बात है। इस सिलसिले में, बल्कि, सुखकर कुछ है तो यह जरूर है कि कोई 'बाहुबली' आई तो हिन्दी में भी आई। सुना है साहित्य अकादमी से पुरस्कार-प्राप्त कृतियों को आठवीं

अनुसूची में शामिल सभी भाषाओं में उल्था करते हैं। हो सकता है कि इसमें तुष्टीकरण जैसा भी कुछ हो, लेकिन, फिलहाल, ऐसा भी तो नहीं ही है कि उन्हें केवल हिन्दी में उल्था करें और वे देश भर के सामने आ जाएँ !

तो हिन्दी को कुछ और नहीं, बस हिन्दी होना है। वह जनभाषा है, उसे कुछ और जनभाषा होना है। उसे देश की हर पहली भाषा की अपनी भाषा बनना है, उसे किसी पहली भाषा की जगह नहीं लेनी है और अपने भीतर देश की हर पहली भाषा को जगह देनी है। जहाँ तक राजभाषा का सवाल है, एक ही बात कहनी है कि देश ही नहीं, दुनिया भर में कहीं भी, राज-काज ही नहीं, किसी भी प्रयुक्ति, किसी भी प्रयोजन के लिए, हिन्दी ही नहीं, कोई भी भाषा, अगर वह चलती भाषा है, तो जैसी है, जैसे है, पर्याप्त है, वैसी ही, वैसे ही, अगर उस प्रयुक्ति, उस प्रयोजन को अपने जन के लिए अपारदर्शी नहीं रखना है, तो। भाषा के साथ यह नहीं है कि वह इस काम की हो जाएगी तो इससे यह काम लिया जाएगा, यह है कि उसे इस काम में लीजिए, वह इस काम की हो जाएगी।

संदर्भ और पाद-टिप्पणी

1. जनभाषा के रूप में हिन्दी का उल्लेख बहुधा और बहुविध है। उदाहरण के लिए "हिन्दी में जोड़ने की इस ताकत का ही परिणाम है कि प्राचीन काल से ही यह जनभाषा बनी हुई है। पिछले हजार सालों से हिन्दी अपने विभिन्न रूपों में पूरे देश की जनता को एकता, सद्भाव और जागृति का संदेश देती रही है। संतों और आचार्यों ने हिन्दी के माध्यम से ही देश के जन-जन तक अपना संदेश पहुँचाया है।"-हीरालाल बाछोतिया, हिन्दी और भारतीय भाषाओं में अन्तःसम्बन्ध, 'भाषा, संस्कृति और लोक', सं. दयानिधि मिश्र, वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 56
2. हिन्दी और हम, विद्यानिवास मिश्र, ग्रंथ अकादमी, 2001, पृ. 12
3. "इसमें कोई दो राय नहीं कि हिन्दी से इतर कोई संपर्क भाषा देश में नहीं है, जिसमें पूरा देश संपर्क कर सकता हो।" - अशोक चक्रधर, प्रभात खबर (हिन्दी दिवस पर विशेष) 14 सितंबर, 2011
4. " केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो सही माने में किसी भी क्षेत्र की मातृभाषा नहीं है। कदाचित यही कारण है कि सारा देश उसे अपनी भाषा के रूप में अपना रहा है। इसी प्रकार संस्कृत भी भारत के किसी एक क्षेत्र की मातृभाषा नहीं थी।"- रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय
5. विस्तार के लिए देखें, संविधान के अनुच्छेद 343 से 351तक
6. विद्यानिवास मिश्र, हिन्दी और हम, ग्रंथ अकादमी, 2011, पृ. 64
7. प्रेमचंद 'हिन्दी' के 'हिन्दी' नाम से भी राजी थे, इस आधार पर कि 'हिन्दुस्तान' ही 'हिन्द' भी है, "जिस प्रकार अंग्रेजों की भाषा अंग्रेजी, जापान की जापानी, ईरान की ईरानी और चीन की चीनी है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा को हिन्दुस्तानी कहना केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है। और अगर इस देश को हिन्दुस्तान न कहकर केवल हिन्द कहें, तो इसकी भाषा को हिन्दी कह सकते हैं।- प्रेमचंद, 'हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी : कुछ संदर्भ, सं. रविनन्दन सिंह, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 2017, पृ.3

प्राध्यापक, हिंदी विभाग
श्री बलदेव पी.जी. कॉलेज, बड़ागाँव
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

3

काशी नागरीप्रचारिणी सभा : हिंदी की प्रथम अंतर्राष्ट्रीय प्रचारक संस्था

डॉ. राकेश कुमार दूबे

आज हिंदी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त है। हिंदी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर प्रदान करने एवं उसके आरंभिक प्रचारकों एवं उसे जिन व्यक्तियों एवं संस्थाओं का नाम प्रमुखता से लिया जाता है, उनमें काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अति विशिष्ट स्थान रहा है। नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) के प्रचारार्थ स्थापित हुई इस संस्था ने भारत में हिंदी का जो आंदोलन आरंभ किया, उसे अत्यंत व्यापक फलक प्रदान किया और हिंदी के लिए तब तक संघर्ष किया जब तक कि उसे आंशिक रुप में ही सही, लोकभाषा से राजभाषा के पद तक नहीं पहुँचा दिया, परंतु इसके समानांतर ही सभा ने एक और आंदोलन चलाया और वह था भारत से बाहर रह रहे भारतवंशियों और विदेशियों में भी हिंदी भाषा का प्रचार करना और सभा द्वारा चलाया गया यह आंदोलन इतना महत्वपूर्ण था कि सभा के अलावा यदि अन्य व्यक्तियों ने भी विदेशों में हिंदी प्रचार का यदि कोई कार्य किया तो उसकी भी प्रारुप और प्रेरणास्रोत यहीं संस्था बनी।

नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना 16 जुलाई, 1893ई. को एक वाद–विवाद संस्था के रुप में काशी में हुई थी जिसके मूल में नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) का प्रचार प्रमुख था। इसके स्थापनकर्तात्रय पं0 रामनारायण मिश्र, बाबू शिवकुमार सिंह और बाबू श्यामसुंदरदास थे।[1] सभा की स्थापना के समय ही सभा के जो उद्देश्य, नियम और सभासदों के कर्तव्य निर्धारित किये गये उनमें ''सभासदों का मुख्य कर्तव्य है कि नागरी भाषा से अपनी उन्नति करें, नागरी जानने वाले इष्ट मित्रों से नागरी अक्षर और भाषा में पत्र व्यवहार करें, लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित करें; इसके सभासद अन्य स्थानीय नागरीप्रचारिणी सभाओं से पत्र व्यवहार द्वारा एकता और मित्रता करें, यथामध्य दूसरे स्थानों में ऐसी सभा स्थापन करने का प्रयत्न करें,''[2] इत्यादि प्रमुख थे।

हिंदी का सर्वत्र प्रचार करना सभा के उद्देश्यों में शामिल था इसलिए सभा की स्थापना के साथ ही इस बात का उद्योग होने लगा कि हिंदी के विद्वानों को इस संस्था से जोड़ा जाए। भारत जीवन पत्र के संपादक बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री प्रथम महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, जो सभा से जुड़े। 17 फरवरी, 1894ई. को बाबू राधाकृष्णदास ने सभा का सभापति होना स्वीकार कर लिया[3] और उसके बाद दिनोंदिन सभा में अच्छे–अच्छे हिंदी के विद्वान–स्थानिक और विदेशी, सभा के सभासद होने लगे।

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा विदेशों में किये गये हिंदी प्रचार कार्य का अध्ययन करने से पूर्व उसके प्रचार कार्य के स्वरुप अर्थात् अपनाये गये माध्यमों का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा। सभा के दस्तावेजों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अपनी स्थापना के बाद ही सभा ने सर्वप्रथम हिंदी के विदेशी विद्वानों एवं हितैषियों को सभा से जोड़ना आरंभ किया जिन्होंने सभा की हर प्रकार से सहायता की। दूसरे, 20वीं सदी के आरंभ में भारत के अनेंक समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों एवं धर्म प्रचारकों का नागरीप्रचारिणी सभा की सदस्यता ग्रहण कर लेने के परिणामस्वरुप भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो हिंदी संस्थाएं, पाठशालाएं और पुस्तकालय स्थापित हुए उनके नाम नागरीप्रचारिणी सभा, हिंदीप्रचारिणी सभा, हिंदी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन इत्यादि रखे गये अर्थात् सभी काशी की नागरीप्रचारिणी सभा के 'मॉडल' पर और 20वीं सदी के प्रथम दशक में जब भारत के कई प्रचारक भारतीय संस्कृति एवं भाषा के प्रचारार्थ

उपनिवेशों में गये तो उन्होंने वहां पर भी इसी मॉडल पर ही संस्थाओं की स्थापना करवायी और उसके बाद जब उपनिवेशों में रह रहे प्रवासी भारतवंशियों में अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा के प्रति चेतना जाग्रत हुई तो उन्होंने भी उसी प्रारुप पर संस्थाएं स्थापित कीं अर्थात् मूल प्रेरणास्रोत कहीं न कहीं काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ही थी।

विदेशों में हिंदी प्रचार के संदर्भ में यदि भारतीयों की बात की जाय तो ज्ञात होता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र भारत के ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्रथम बार हिंदी का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने और उसे भारत के बाहर पहुंचाने का कार्य किया। उन्होंने अपनी किताबों का एक सेट सीधा महारानी विक्टोरिया को भेजा। एक सेट सीधा जर्मनी के कैसर के पास भेंजा जिसकी स्वीकृति ब्रिटिश दूतावास की मार्फत लंदन आई फिर वायसराय की मार्फत बनारस पहुंची। ऐसे ही एक सेट रूस के जार के पास भी भेजा। इसकी स्वीकृति भी उनके पास आई। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्हीं बातों के कारण हिंदी के अस्तित्व को पहली बार देश के बाहर मान्यता मिली।[4]

भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद विदेशों में हिंदी के प्रचार का सबसे सफल प्रयास काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने किया, जैसा कि आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा था कि 'भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने जो प्रस्तावना की थी, उसी का उद्घाटन नागरीप्रचारिणी सभा के पचास वर्षों का इतिहास है'।[5] डॉ. जी. ए . ग्रियर्सन हिंदी के प्रथम विदेशी विद्वान थे जिन्होंने सर्वप्रथम सभा की सदस्यता स्वीकार की। वे उन 72 व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने प्रथम वर्ष में ही सभा की सदस्यता ग्रहण की[6] और साथ ही सभा का अभिभावक बनना भी स्वीकार किया। डॉ. ग्रियर्सन ने 24 मार्च 1894ई. को ही सभा की सदस्यता ग्रहण कर ली थी और उनकी सभासद संख्या 22 थी।[7]

डॉ. ग्रियर्सन जैसे विद्वान के प्रथम वर्ष में ही नागरीप्रचारिणी सभा की सदस्यता ग्रहण कर लेने के पश्चात् हिंदी के कई विदेशी विद्वानों ने भी सभा की सदस्यता ग्रहण कर ली। 10 दिसंबर, 1894 को डॉ. जी. थीबो[8], प्रिंसिपल म्योर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद; 28 जनवरी, 1895 को डॉ. ए . फुहरर, म्यूजियम, लखनऊ[9] और 28 जनवरी 1895 को लाला टहलराम, क्राइस्ट कॉलेज, ऑक्सफोर्ड इंग्लैंड[10] ने सभा की सदस्यता ग्रहण कर ली।

सभा की स्थापना के साथ ही एक 'नागरी भंडार' पुस्तकालय भी स्थापित हुआ था और आरंभ से ही उसे हिंदी की पुस्तकों से समृद्ध करना भी सभा के उद्देश्यों में शामिल था। प्रथम वर्ष से ही देश के हिंदी विद्वानों के साथ ही विदेशी विद्वानों ने भी सभा के इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। सभा की स्थापना के दूसरे ही वर्ष डॉ. ग्रियर्सन ने पुस्तकों से सभा की सहायता की।[11] तृतीय वर्ष में डॉ. जी. ए. ग्रियर्सन (बांकीपुर) ने तीन पुस्तकों से और पादरी आर. ई. ग्रीब्स (मिर्जापुर) ने दो पुस्तकों से सभा की सहायता की।[12] इसी प्रकार चतुर्थ वर्ष में उपर्युक्त लिखित व्यक्तियों के अलावा मिस्टर ब्लॉकेट (मथुरा) ने भी पुस्तकों द्वारा सभा की सहायता की[13] और आगे भी यह क्रम जारी रहा।

काशी की यह संस्था सभीं हिंदी सेवियों के कार्यों पर अपनी दृष्टि रखती थी और समय–समय पर उनके कार्यों की समालोचना भी किया करती थी। 7 फरवरी, 1896ई. को हिंदी के परम हितैषी फ्रेडरिक पिनकाट की मृत्यु हो गयी[14] तो इस घटना पर सभा में हार्दिक शोक प्रकट किया[15] महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबली पर 1897ई. में कई लोगों को पदवियां मिलीं, जिनमें डॉ. रुडाल्फ हार्नली भी शामिल थे। उनको सी. आई. ए. की पदवी मिली तो सभा ने हर्ष प्रकाशित किया और उनको आनंद प्रकाशक पत्र भेंजे।[17] इसी प्रकार जब डॉ. जी. ए . ग्रियर्सन ने 'बिहारी सतसई' को संपादित किया तो सभा ने इस ग्रंथ की सुंदर समालोचना करते हुए लिखा कि ''डॉ. ग्रियर्सन द्वारा यह ग्रंथ संपादित है और लालचंद्रिका टीका सहित है। यह ग्रंथ बहुत ही सुंदर छपा है और इसमें नोट,

जीवन चरित्र आदि में संपादक ने बड़ा ही परिश्रम किया है।''[18]

सितंबर, 1896 में पेरिस नगर में 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएंटलिस्ट' का 11वां अधिवेशन आयोजित हुआ जिसमें संसारभर के पुरातत्व तथा भाषातत्ववेत्ताओं का जमघट हुआ। काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने भी यूरोपीय विद्वानों का ध्यान हिंदी की ओर आकृष्ट कराने का अच्छा शुअवसर जानकर कांग्रेस में एक पत्र भेजा और उसके साथ ही अंग्रेजी में एक लेख बाबू श्यामसुंदरदास से लिखाकर भेजा जिसमें संक्षेप में हिंदी का इतिहास, हिंदी की उत्तमता, हिंदी में अत्यंत उपयोगी ग्रंथों का वर्तमान होते हुए भी अंधकार में पड़े रहना, एशियाटिक सोसाइटी के थोड़े ही उद्योग से जिन उत्तम ग्रंथों का पता लगा है, उनका वर्णन आदि भली–भांति दिखलाया गया था।[19] सभा के इस कार्य से पाश्चात्य विद्वान काफी प्रभावित हुए और उनमें हिंदी के प्रति आकर्षण बढ़ा और उसी का प्रभाव था कि 1897ई. में जब फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर सिल्वान लेवी, जो कि पेरिस की प्रसिद्ध 11वीं ओरिएंटलिस्ट कांग्रेस के भारतीय विभाग के सेक्रेटरी थे, भारत आये तो वे सभा को देखने काशी आये थे और सभा के कार्यकलाप देखकर अपनी परम प्रसन्नता प्रकाशित की थी।[20]

सभा की स्थापना के बाद हिंदी के विदेशी विद्वानों ने न केवल सभा की सदस्यता ग्रहण की, बल्कि उसके संरक्षक, आनरेरी सभासद और प्रबंधकारिणी समिति में भी शामिल हुए और सभा के साधारण अधिवेशनों और वार्षिक अधिवेशनों में तो विदेशों लोगों की उपस्थिति उत्साहजनक हुआ करती थी। डॉ. जी. ए . ग्रियर्सन प्रथम वर्ष में ही सभा का संरक्षक बनना स्वीकार किया था। तृतीय वर्ष में सभा के कुल आनरेरी सभासदों की संख्या मात्र 7 थी जिनमें डॉ. जी. थीबो और डॉ. ए. फुहरर अर्थात् दो विदेशी विद्वान उसमें शामिल थे[21] और पॉचवें वर्ष में ही रेवरेंड एडविन ग्रीब्ज उन 8 लोगों में शामिल थे, जो सभा की प्रबंधकारिणी समिति में शामिल थे।[22] सभा का चौथा वार्षिक अधिवेशन 28 जुलाई 1897ई. को हुआ जिसमें काशी के मजिस्ट्रेट मि. डब्ल्यू. एच. कॉब ने सभापति का आसन ग्रहण किया और महाराज कुमार भिनगा, ठाकुर साहब जयपुर, प्रोसेसर जॉनसन, मिस्टर ग्रीव्ज, मिस्टर टामसन, ज्वाइंट मजिस्ट्रेट मिस्टर डुपर्ने इत्यादि अधिवेशन में उपस्थित थे। इस अधिवेशन में वार्षिक रिपोर्ट और अंग्रेजी की क्वार्टरली रिपोर्ट पढ़ी गयी और उसके बाद बाबू श्यामसुंदरदास बी. ए . ने अपना लेख 'हिंदी साहित्य' पर पढ़ा और उसके बाद मिस्टर ग्रीब्ज ने भी इसी विषय पर अपना मत प्रकाशित किया।[23]

सभा ने हिंदी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जितने भी बड़े आयोजन किये उन सबों में उसे हिंदी के विदेशी विद्वानों का पूर्ण समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ। हिंदी का एक सर्वांग व्याकरण बनाने में,[24] हिंदी की लेख प्रणाली के सुधार एवं उसे एक निश्चित रुप देने में,[25] सभा के वर्तमान भवन की जमीन प्राप्त करने में,[26] 1904ई0 से आयोजित 'सुबोध व्याख्यानमाला' की आयोजना में,[27] हिंदी शब्दसागर के निर्माण में[28] अर्थात् सभीं बड़े आयोजनों में पूर्ण सहयोग और समर्थन प्राप्त था। सभा के शुरुआती वर्षों में डॉ. जी. ए . ग्रियर्सन, रेवरेंड एडविन ग्रीब्ज और ई. एच. रेडिचे ने जैसा सहयोग प्रदान किया वह सभा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। डॉ. ग्रियर्सन सभा के लिए बड़े दानदाताओं में से थे। उन्होंने विभिन्न मदों में कुल रु0 3001 का दान सभा को दिया था।[29] वहीं, रेवरेंड ऐडविन ग्रीब्ज और ई. एच. रेडिचे के नाम को चिरस्थायी बनाने के लिए दो रजत पदक 'ग्रीब्ज पदक' और 'रेडिचे पदक' स्थापित किया जो कि प्रति चौथे वर्ष विज्ञान विषय पर दिया जाता था।[30]

20वीं सदी का आरंभ आते–आते काशी की सभा की गणना भारत की प्रमुख संस्थाओं में की जाने लगी और इसका हिंदी प्रचार का क्षेत्र राष्ट्रव्यापी हो गया था। इस समय तक डॉ. जी. ए . ग्रियर्सन, रेवरेंड एडविन ग्रीब्ज, डॉ. ए. फुहरर, डॉ. जी. थीबो के अलावा 2 सितंबर, 1901 को डॉ. रुडाल्फ हार्नली[31] (इंग्लैंड), 1 दिसंबर, 1902 को बाबू सालिगराम सिंह[32]

(जापान), 26 मार्च, 1904 को मिसेज एनी बेसेंट[33] (भारत), 26 मार्च को मि. जार्ज एस. एरण्डेल और मिस फ्रेंसिसिया एरण्डेल[34] (दोनों भारत) और 27 मई, 1905 को कलेक्टर ई. एच. रेडिचे[35] ने सभा की सदस्यता स्वीकार कर ली और हिंदी के विदेशी विद्वानों में सभा काफी लोकप्रिय और एक सम्मानित संस्था बन गयी थी।

भारत से बाहर हिंदी का व्यवस्थित रुप से प्रचार कार्य 20वीं सदी के प्रथम दशक से आरंभ होता है और इसको करने का श्रेय आर्यसमाजी प्रचारकों को जाता है। आर्य समाजियों द्वारा भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा का जो प्रचार कार्य किया गया उसे दो भागों में बॉटा जा सकता है : भारत में प्रचार और विदेशों में प्रचार। आर्यसमाज के जो दस नियम बनाये गये थे उनमें अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना, संसार का उपकार करना और सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना, इत्यादि बातें विदेशों में आर्यसमाज और हिंदी के प्रचार से कहीं न कहीं संबंधित थीं[36] और 20वीं सदी के आरंभ से आर्यसमाजी प्रचारकों ने यह कार्य किया।

1893ई. में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका गये और लम्बे समय तक वहां पर प्रवासी भारतवंशियों के लिए संघर्ष किया[37] पर उनका दृष्टिकोण राजनीतिक अधिक था। सर्वप्रथम 1896ई. में प्रथम नं. बंगाल पदाति सेना तीन वर्ष के लिए मारीशस गयी और जब वापस आने लगी लगी तो कुछ आर्य समाजी सूबेदारों ने सत्यार्थ प्रकाश की प्रतियां लोगों में बांट दी और वहां के कुछ लोग आर्यसमाजी विचारों के संपर्क में पहली बार आये। इसी दौरान लाहौर से प्रकाशित 'आर्य पत्रिका' नामक अंग्रेजी पत्र भी यहां आने लगा। इसका प्रभाव यह हुआ कि यहां पर कुछ लोग आर्य समाज से काफी प्रभावित हो गये और 1903ई. में तोतारामजी, जगमोहन गोपालजी और गुरुप्रसाद दलजीत लालजी ने मारीशस में आर्य समाज स्थापित करने का घोर परिश्रम किया पर पूरी तरह से सफल न हो सके।[38]

1905ई. से पूर्व जो भारतवासी उपनिवेशों को गये उनमें से कुछ आर्य समाजी विचारों से प्रभावित थे और उन्होंने वहां जाकर आर्यसमाजी विचारों का प्रचार और आर्यसमाजी संस्था स्थापित करने का प्रयास किया। इस तरह की प्रथम संस्था ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका में कीनिया के नैरोबी शहर में 3 अगस्त, 1903ई. को 'आर्यसमाज' नाम से स्थापित हुई।[39] इस तरह की दूसरी संस्था 1904ई. में फीजी देश के सामाबूला शहर में स्थापित हुई।[40]

भारत से बाहर आर्यसमाज का व्यवस्थित रुप में प्रचार 1905ई. से आरंभ होता है, जब दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों के अनुरोध पर दयानंद कालेज, लाहोर के प्रधानाचार्य महात्मा हंसराज ने भाई परमानंद को केवल 27 वर्ष की उम्र में आर्यसमाजी प्रचारक के रुप में नेटाल भेंजा।[41] भाई परमानंद ने वहां जाकर नेटाल, मेरित्सबर्ग, लेडीस्मिथ, डंडी, ट्रांसवाल, प्रिटोरिया, केपटाउन इत्यादि नगरों में आर्य आदर्श और प्राचीन वैदिक धर्म का उपदेश दिया और वह भी अधिकांशतः हिंदी भाषा में। उनके उपदेश का फल यह हुआ कि वहां पर 'हिंदू सुधार सभा' और 'हिन्दू यंगमैंस एसोसिएशन' नामक संस्थाओं की स्थापना हुई और भारतवंशियों में एक नवीन चेतना का संचार हुआ।

20वीं सदी के प्रथम दशक से आर्यसमाजी प्रचारकों के विदेशों में जाने एवं अपना अधिकांश प्रचार कार्य हिंदी भाषा में करने के पीछे मुख्य कारणों को जानना महत्वपूर्ण होगा। नागरी–प्रचारिणी सभा द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी का प्रचार कार्य करने के कारण तत्कालीन प्रमुख आर्यसमाजी नेता एवं प्रचारक सभा के प्रचार कार्य से काफी प्रभावित थे और उनमें से अधिकांश यथा–लाला हंसराज, लाला लाजपत राय[42] और यहां तक कि स्वयं भाई परमानंद सभा के सभासद बन गये थे। हिंदी में प्रचार कार्य करने का दूसरा कारण यह था कि विदेशों में जो भारतवासी मजदूरों के रुप में ले जाये गये थे, वे भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से थे और सबकी भाषा तथा बोलियां एक दूसरे से भिन्न थीं

परंतु हिंदी भाषा उनमें से अधिकांश थोड़ा बहुत समझ लेते थे जिसकी सुंदर विवेचना करते हुए भवानी दयाल संयासी ने लिखा था कि ''यहां यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि केवल दक्षिण अफ्रीका का ही नहीं, प्रत्युत जिन–जिन उपनिवेशों में हमारे देशवासी गिरमिट की प्रथा में गये हैं, यद्यपि वे एक दूसरे से हजारों कोस दूर हैं, कोई प्रशांत महासागर के तट पर है तो कोई हिंद महासागर के किनारे, कोई अमेरिका के दक्षिणी भाग में है तो कोई अफ्रीका के दक्षिणी भाग में, तो यह देखकर विस्मय होता है कि उन सभीं देशों के प्रवासी भारतीयों ने पारस्परिक व्यवहार के लिए एकमत में हिंदी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार किया–उसी से अपनी तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति की।''[43]

भाई परमानंद के बाद प्रवासी भारतवंशियों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, विशेषकर हिंदी भाषा, के प्रचार–प्रसार में अग्रणी एवं अति विशिष्ट स्थान स्वामी शंकरानंद संयासी का था। उनका काशी नागरीप्रचारिणी सभा से घनिष्ठ संबंध था। वे उन 12 लोगों में से एक थे जिन लोगों ने इस सभा की आधारशिला रखी थी।[44] प्रवासी भारतीयों को वैदिक सभ्यता का ज्ञान देने एवं मातृभाषा की महत्ता बतलाने हेतु स्वामी शंकरानंद 29 सितंबर, 1908 को दक्षिण अफ्रीका पहुंच थे। वे लगभग 4 वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहे और वहां के विभिन्न नगरों में घूम–घूमकर वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार किया और वह भी अधिकांशतः हिंदी भाषा में। उन्होंने लोगों से मातृभाषा में शिक्षा और 16 संस्कारों को अपनाने की बात पर बल दिया साथ ही भारतीय रीति रिवाजों एवं त्योहारों को अपनाने की शिक्षा दी।[45] भारतीयों के धार्मिक भाव जो कुसंग और बुरे संस्कारों के कारण दब गये थे, वे स्वामीजी के विद्वत्तापूर्ण भाषणों से फिर पल्लवित हो उठे। उनके प्रचार का फल यह हुआ कि हिंदुओं की अंतर्दृष्टि खुल गई और वह अपना सच्चा स्वरूप देख पाए। दीपावली, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी के साथ ही प्रवासी भारतीयों में अत्यंत लोकप्रिय पर्व महाशिवरात्रि जो मनाया जाता है वह बहुत कुछ आर्य समाजियों, विशेषकर स्वामी शंकरानंद, की देन है।

भारत से बाहर और भारत में भी हिंदी भाषा के प्रचार में भवानी दयाल संयासी का नाम प्रमुखता से गिना जाता है। दक्षिण अफ्रीका में जन्म लेकर तथा दक्षिण अफ्रीका और भारत में रहते हुए उन्होंने भारत तथा संपूर्ण विश्व में बसे प्रवासी भारतीयों में हिंदी के प्रचार का हर संभव प्रयास किया। जर्मिस्टन में मजदूरी करते हुए भी उन्होंने 'ट्रांसवाल हिंदीप्रचारिणी सभा' की स्थापना की।[46] उन्होंने पॉच साल लगातार हिंदी का प्रचार कार्य किया और इस दौरान जर्मिस्टन, न्यूकासल, डेनहाउसर, हाटिंगस्प्रुट, ग्लेंको, वर्नसाइट, लेडीस्मिथ, विनेन एवं जेकोब्स आदि शहरों और कस्बों में 'हिंदीप्रचारिणी सभाएं' और हिंदी पाठशालाएं स्थापित कीं। इन सभाओं को एक केन्द्रिय मंडल के अंतर्गत संगठित करने के लिए 'दक्षिण अफ्रीका हिंदी–साहित्य–सम्मेलन' की स्थापना की जिसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन 1916ई. में लेडीस्मिथ में और दूसरा वार्षिक अधिवेशन 1917ई. में पीटर मेरित्सवर्ग में बड़ी धूमधाम से हुआ।[47]

1922ई. में भवानी दयाल ने हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में 'हिंदी' नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जिसने पत्रकारिता के इतिहास और हिंदी के प्रचार में एक प्रतिमान स्थापित किया। यह पत्रिका सचित्र और विषयवस्तु की दृष्टि से काफी समुन्नत थी और प्रवासी भारतीयों में तो वह ऐसी लोकप्रिय हुई कि नेटाल के साथ ही साथ ट्रांसवाल, केप, रोडेशिया (वर्तमान जिम्बाम्बे), मोजाम्बिक, टंगेनिका, युगान्डा, केनिया, मॉरीशस, फिजी, डमरारा, जमैका, ग्रेनेडा, सुरीनाम, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा और भारत में भी उसकी काफी मांग थी। परंतु, जिस प्रकार हिंदी पत्रिका उन्नति करती जा रही थी उसी क्रम में उसे निकालने में घाटा भी होता जा रहा था। 1923–24ई. में ही भवानी दयाल जी ने अपील की कि यदि उन्हें उचित सहायता न मिली तो इस पत्र को बंद कर देना पड़ेगा। संसार के विभिन्न भागों से इस पत्रिका को सहायता मिली,

यहां तक कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने भी 50रु. पत्रिका के सहायतार्थ प्रदान किया था।[48]

1930ई0 के बाद सभा ने उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार का उद्योग आरंभ किया। उपनिवेशों में हिंदी के प्रचार का जो कार्य हुआ था और इस क्षेत्र में सभा जो उद्योग कर रही थी, उसका बड़ा ही सुंदर लेखा–जोखा सबके सम्मुख प्रस्तुत किया और अपने वार्षिक विवरण में लिखा कि ''सभा ने इस वर्ष उपनिवेशों में हिंदी प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किया है और मॉरीशस के श्री त्रिभुवन सिंह जी ने, जो सभा के सभासद हैं और इस समय भारत में हैं, यह कार्य करना स्वीकार किया है। लंका में सभा की ओर से श्री सत्यनारायण शर्मा प्रचार कार्य कर रहे हैं। आशा है उपनिवेशों में हिंदी प्रचार का कार्य बढ़ेगा।[49]

1940ई. के बाद विदेशों में हिंदी का प्रचार बढ़ा जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि जहां पर पहले विदेशी सभासदों की संख्या मात्र 8 थी वहीं 1942ई. मे 14 हो गयी जिनमें मारीशस में के0 एम. भगत (हिंदीप्रचारिणी सभा, मोताईलोंग) केनिया में रणधीर विद्यालंकार, रमन भाई जे. पटेल और सत्यपाल; युगांडा में दयालजी भीमभाई देसाई; बोस्टन, अमेरिका में डॉ. आनंद के. कुमारस्वामी; मस्केट में विश्राम जे. पटेल; बर्मा में डॉ. ओमप्रकाश और गोपालदास; इंग्लैंड में रेवरेंड एडविन ग्रिब्ज, टी. ग्राहम बेली और जे.सी. जैक्शन; पोलैंड में प्रो. स्टेफेन स्टासिक; और रुस में ए. बारान्निकोफ सभा के सभासद थे।[50] काशी की इस सभा ने यह बतलाया कि किस प्रकार एक छोटे से टापू मारीशस में हिंदी उन्नति कर रही है। 1926ई. में 'तिलक विद्यालय सभा' के नाम से स्थापित संस्था 1935ई. में 'हिंदीप्रचारिणी सभा' नाम से जानी गयी और इसी वर्ष इसकी रजिस्ट्री भी हुई। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से संबद्ध इस संस्था ने मारीशस में हिंदी विद्यालय, पुस्तकालय और हिंदी के प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य किया।[51] इसके अलावा चीन, फ्रांस के अलावा नई दुनियां यानी कि अमेरिका में हिंदी के प्रचार के लिए पं. गोविंदवल्लभ पंत और जगदीशचंद्र अरोड़ा के द्वारा किये गये कार्यों को भी सभा ने पटल पर रखा।[52]

15 माघ, सं. 2000 वि. (1943ई.) को काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने अपना अर्द्ध–शताब्दी उत्सव मनाया। उस समय भारत में एक से बढ़कर एक हिंदी के विद्वान थे परंतु फिर भी भारत और भारत से बाहर प्रवासी भारतीयों में हिंदी प्रचार के लिए भवानी दयाल संयासी जी द्वारा किये गये प्रयास और उनकी हिंदी सेवाओं को मान्यता प्रदान करते हुए काशी की सभा द्वारा उन्हें अपने 'अर्द्ध–शताब्दी उत्सव' के सभीं कार्यक्रमों का सभापति चुना गया। सभाभवन के पीछे बनवाये गये विशाल पंडाल में यह उत्सव हुआ और भारत के गण्यमान हिंदी के विद्वान इस अवसर पर उपस्थित थे। सबसे अंत में भवानी दयाल जी ने अपना मुद्रित भाषण पढ़ा जिसमें भारत तथा वृहत्तर भारत में हिंदी भाषा की तत्कालीन अवस्था का सिंहावलोकन कराते हुए उसकी विभिन्न समस्याओं का बहुत सुंदर विवेचन किया था।[53]

भारत की आजादी के बाद भी सभा द्वारा हिंदी का प्रचार कार्य जारी रहा और यह कार्य न केवल भारत के अहिंदीभाषी क्षेत्रों बल्कि भारत के बाहर भी चलता रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि 1951ई. तक विदेशी सभासदों की संख्या 22 तक पहुँच गयी जिनमें डॉ. जे. शिवगोबिन (मारीशस), प्रकाशवती दयाल (नेटाल, दक्षिण अफ्रीका), प्रो. डब्ल्यू. नारमन ब्राउन (प्रो. संस्कृत, पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय, अमेरिका), वद्यनाथ वर्मा (न्यूयार्क, अमेरिका), काशीनाथ दामोदर नायक (डच इंडिया), रामप्रसाद जी खंडेलवाल (कराची, पाकिस्तान), श्यामाचरण मिश्र (बर्मा), डॉ. आर. एल. टर्नर, डॉ. एच. डब्ल्यू. बेली, ए. जी. शिरफ, डब्ल्यू. जी. आर्चर (सभीं इंग्लैंड), डॉ. जी. टुची (रोम विश्वविद्यालय, इटली), डॉ. ऐल्सडार्फ (हैंबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी), आर. क्लोडिक विलहरजेवा (युगोस्लाविया), प्रो. जी. मार्गेनस्टर्न (ओस्लो विश्वविद्यालय, नार्वे), डॉ. जूल्स बलॉक (पेरिस विश्वविद्यालय, फ्रांस), डॉ. आद्रे शार्प वान वेनेडेनली (बेल्जियम), प्रो. ए.

बारान्निकोव (लेनिनग्राद, रुस), दयानंद सीनाथ (ट्रिनीडाड), डॉ. एफ. बी. जे. कुपलर और डॉ. जे. पी. एच. वोगेल (लीडेन विश्वविद्यालय, हालैंड) शामिल थे[54] और उनकी गणना तत्कालीन विश्व के प्रमुख हिंदी विद्वानों में की जा सकती है। सभा का यह प्रचार कार्य आगे भी चलता रहा और विदेशी सभासदों की संख्या तो बढ़ती ही गयी साथ ही उपनिवेशों की आजादी के साथ ही विदेशों में हिंदी का प्रचार भी बढ़ता गया।

संदर्भ सूची :

1. शास्त्री, वेदव्रत, नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्ध–शताब्दी का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2000 वि., पृष्ठ 5
2. भारत जीवन, 14 अगस्त, 1893, भारत जीवन कार्यालय, बनारस सिटी, पृष्ठ 7
3. नागरीप्रचारिणी सभा का प्रथम वार्षिक विवरण, 1893–94ई., पृष्ठ 5
4. गोपाल, मदन, भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजपाल एण्ड संस दिल्ली 1976ई., पृष्ठ 34
5. शास्त्री, वेदव्रत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्धशताब्दी का इतिहास, वक्तव्य, पृष्ठ 1
6. नागरीप्रचारिणी सभा का प्रथम वार्षिक विवरण, 1893–94ई., पृष्ठ 18
7. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1896–97, पृष्ठ 21
8. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1895–96ई., पृष्ठ
9. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1895–96ई., पृष्ठ 35
10. नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण, 1897–98ई., पृष्ठ 27
11. नागरीप्रचारिणी सभा का द्वितीय वार्षिक विवरण, 1894–95ई., पृष्ठ 15
12. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1895–96ई., पृष्ठ 15
13. नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण, 1896–97ई., पृष्ठ 19
14. दास, श्यामसुंदर सं0 हिंदी–कोविद–रत्नमाला, पहिला भाग, पृष्ठ 15
15. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1895–96ई., पृष्ठ 14
16. नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण, 1896–97ई., पृष्ठ 15
17. वहीं, पृष्ठ 8
18. वहीं, पृष्ठ 11
19. नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण, 1896–97ई., पृष्ठ 8
20. नागरीप्रचारिणी सभा का पंचम वार्षिक विवरण, 1897–98ई., पृष्ठ 2
21. नागरीप्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिक विवरण, 1895–96ई., पृष्ठ 35
22. नागरीप्रचारिणी सभा का पंचम वार्षिक विवरण, 1897–98ई., पृष्ठ 43
23. वहीं, पृष्ठ 2–3
24. नागरीप्रचारिणी सभा का पंचम वार्षिक विवरण, 1897–98ई., पृष्ठ 8
25. भाषा सब कमेटी की रिपोर्ट, पृष्ठ 20–22.
26. शास्त्री, वेदव्रत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्धशताब्दी का इतिहास, पृष्ठ 39
27. नागरीप्रचारिणी सभा का 12वां वार्षिक विवरण, 1904–05ई., पृष्ठ 22; शास्त्री, वेदव्रत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्धशताब्दी का इतिहास, पृष्ठ 142
28. शास्त्री, वेदव्रत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्धशताब्दी का इतिहास, पृष्ठ 183
29. वहीं, पृष्ठ 279
30. वहीं, पृष्ठ 163–64
31. नागरीप्रचारिणी सभा का 11वां वार्षिक विवरण, 1903–04, पृष्ठ 54
32. वहीं, पृष्ठ 64
33. वहीं, पृष्ठ 70
34. वहीं, पृष्ठ 73
35. नागरीप्रचारिणी सभा का 12वां वार्षिक विवरण, 1904–05ई., पृष्ठ 79
36. अग्रवाल, प्रेमनारायण, प्रवासी भारतीयों की वर्तमान समस्याएँ, मानसरोवर साहित्य निकेतन, मुरादाबाद, 1935, पृष्ठ 143

37. संयासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, राजहंस प्रेस,दिल्ली, 1948, पृष्ठ 27
38. स्वामी, नारायण, विदेशों में आर्य समाज, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1933, पृष्ठ 37
39. वहीं, पृष्ठ 27
40. वहीं, पृष्ठ 49
41. संयासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, पृष्ठ 186
42. नागरीप्रचारिणी सभा का 12वां वार्षिक विवरण, 1904–05ई., पृष्ठ 103
43. संयासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, पृष्ठ 169
44. शास्त्री, वेदव्रत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्धशताब्दी का इतिहास, पृष्ठ 5
45. प्रवासी पत्रिका, वर्ष–1, अंक–2, नवंबर, 1947ई., पृष्ठ 17
46. इंदु पत्रिका, कला–5, खंड–1, किरण–6, जून, 1914, वाराणसी, पृष्ठ 600
47. सिंह, राजबहादुर, प्रवासी की कहानी, बाल साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1939ई., पृष्ठ 105
48. नागरीप्रचारिणी सभा का 32वां वार्षिक विवरण 1924–25ई., पृष्ठ 26
49. नागरीप्रचारिणी सभा का 33वां वार्षिक विवरण सं. 1982, पृष्ठ 31
50. नागरीप्रचारिणी सभा का 50वां वार्षिक विवरण सं. 1999, पृष्ठ 121–22
51. नागरीप्रचारिणी सभा का 54वां वार्षिक विवरण सं. 2003, पृष्ठ 85
52. वहीं, पृष्ठ 86–87
53. हिंदी पत्रिका, वर्ष–4, संख्या–1–9, जनवरी–सितंबर, 1944, पृष्ठ 15–18
54. नागरीप्रचारिणी सभा का 59वां वार्षिक विवरण सं. 2008, पृष्ठ 66–69

सह–संपादक,
पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल
निवास–मकान नं0 168, नेहियां,
वाराणसी–221202,उत्तर प्रदेश,
भारत

4 वैश्विक स्तर पर हिन्दी की स्वीकृति एवं व्याप्ति

प्रो. दिविक रमेश

1.विश्व-पटल पर हिंदी की उपस्थिति

यह जानना उत्साहजक है कि आज विश्व में हिंदी का स्थान, किसी न किसी रूप में उपयोग करने वालों की संख्या की दृष्टि से, दो सबसे बड़ी भाषाओं में पहुंच गया है। यह बात अलग है कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं और वह प्रभावशाली भी बनी हुई है। इस रूप में हिंदी के सामने बड़ी चुनौती भी बनी हुई है।

प्रारम्भ में ही भाषा संबंधी अपनी दृष्टि के बारे में बताना चाहूँगा। अपनी मातृभाषा हिन्दी को सहज ही सर्वाधिक प्यार करते हुए भी, मेरी निगाह में कोई भी भाषा न बड़ी होती है, न छोटी। मां, माँ होती है।

एक शोध के अनुसार, 'आज 137 देशों में हिन्दी भाषा समग्रता से विद्यमान है इन देशों में हिन्दी एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है तथा विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पठन-पाठन और शोध की लम्बी परम्परा की व्यवस्था है।'1 एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार विदेशों में चालीस से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिन्दी पढाई जा रही है। एक मत के अनुसार भारत से बाहर जिन देशों में हिन्दी का बोलने, लिखने-पढने तथा अध्ययन और अध्यापन की दृष्टि से प्रयोग होता है, उन्हें हम इन वर्गों में बांट सकते हैं - 1. जहां भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे-पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालदीव आदि। 2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जैसे- इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि। 3. जहां हिन्दी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढाया जाता है जैसे अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश। 4. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे- संयुक्त अरब अमरीरात (दुबई) अफगानिस्तान, कतर, मिस्र, उजबेकिस्तान, कज़ाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि। कुछ और देश हैं, जहां भारतीयों को जबरन बसाया गया था, जैसे मॉरिशस, फिजी, त्रिनीडाड और टुबेगो आदि ।

डॉ. केदारनाथ सिंह के इस निष्कर्ष से सहमत हुआ जा सकता है कि 'यूरोप केंद्रित सांस्कृतिक प्रभाव का क्षेत्र कुछ सिकुड़ा है और एशिया का साहित्य-मानस एक-दूसरे के निकट **आने के नए रास्तों की तलाश कर रहा है।** बल्कि इस वृत्त का विस्तार करते हुए हम कह सकते हैं कि इस गोलार्द्ध से कुछ पश्चिमी देशों - खासतौर से लैटिन अमेरिकी देशों के सृजन-सूत्र भी जुड़ते दिखाई पड़ रहे हैं और निःसंदेह अफ्रीका के भी।'[2] यह कथन तथ्यों के आधार पर उचित सिद्ध किया जा सकता

है। आज नार्वे, हंगरी, पौलेंड, होलैंड जैसे देश हिन्दी-साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त उत्साहजनक हैं। यूरोपीय देशों के साथ हम चीन और जापान ही नहीं दक्षिण कोरिया जैसे एशियाई देशों को भी सम्मिलित कर सकते हैं। अफगानिस्तान और पाकिस्तान जैसे देशों में भी हिन्दी का प्रभुत्व पग रख चुका है। मार्च, 2010 में आई.सी.सी.आर, नई दिल्ली के सभागार में अफ़गानिस्तान में हिन्दी सीखने वाले विद्यार्थियों से मिलकर और हिन्दी पर उनकी पकड़ देखकर बहुत गर्व हुआ था।

यह जानना भी दिलचस्प होगा कि इंग्लैंड में, हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में हिंदू मंदिरों की भूमिका का भी बहुत महत्त्व माना गया है। वंदना मुकेश के ही अनुसार, लंदन के अनेक मंदिरों के अतिरिक्त, बरमिंघम में श्री गीता भवन, दुर्गा मंदिर, वोलेवरहें प्टन में श्रीराम मंदिर, श्री कृष्ण मंदिर, नौटिघम में कला निकेतन आदि अनेक मंदिरों में हिंदीभाषा की साप्ताहिक कक्षाएं नियमित रूप से चल रही है। कार्डिफ, बेलफस्ट आदि अनेक नगरों में धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के द्वारा हिंदी शिक्षण की सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। अनेक स्वयंसेवी शिक्षक व्यक्तिगत स्तर पर भी हिंदी शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। वे प्रयत्नपूर्वक अपने बच्चों को घरों में हिंदी पढ़ा रहे हैं।

अमेरिका जैसे देश में तो हिन्दी को स्कूलों के स्तर पर भी पढ़ाया जा रहा है- कितने ही अमेरिकी तो भारत आकर विशेष रूप से हिन्दी सीख रहे हैं। वे हिन्दी जानना अपना विकल्प नहीं बल्कि अपनी आवश्यकता मानते हैं। वे जानते हैं कि भारत के भाषाई और सांस्कृतिक संसार तक पहुँच के लिए हिन्दी का आना अनिवार्य है। भारतीय जीवन के गहरे एवं यथार्थ पूर्ण अध्ययन के लिए भी वे हिन्दी की जानकारी को अनिवार्य मानते हैं। कुछ का इरादा तो हिन्दी में पारंगत होकर हिन्दी का अध्यापक बनना भी है।[3] एक मत के अनुसार अमेरिका में लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। हाल ही (14 जनवरी, 2020) के एक समाचार के अनुसार अमेरिका स्थित भारतीय दूतावास ने हिंदी सीखने और भारत की उदार संस्कृति के बारे में समझ बढ़ाने के इच्छुक अमेरिकियों और विदेशी नागरिकों के लिए निशुल्क हिंदी कक्षाएं शुरु की हैं।

सच्चाई यह भी है, और यह कम महत्वपूर्ण भी नहीं है, कि भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रभावशाली आगमन और उससे उपजे भारतीय बाज़ार के दबाव ने हिन्दी की ओर बाहर और भीतर दोनों ही लोगों का न केवल अधिक ध्यान आकृष्ट किया है बल्कि उसकी उपयोगिता को सिद्ध करते हुए उसके अन्यान्य रूपों के विस्तार को भी संभव किया है। और यह क्रम बढ़ता ही जा रहा है।

भले ही किसी विदेशी, खासकर अतिविशिष्ट विदेशी के द्वारा हिन्दी के चन्द शब्द बोलने से हिन्दी को वैश्विक भाषा कहना अतिशयोक्ति हो सकता है, तो भी जब न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव बान की मून और अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, भारत में आकर अपने संबोधन में हिन्दी वाक्य बोलते हैं तो उसे कूटनीति के साथ-साथ हिन्दी के वैश्विक वर्चस्व या स्वीकार का भी द्योतक माना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी. नरसिंहराव, राष्ट्र मंडल देशों की बैठक में इंदिरा गांधी, दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर चंद्रशेखर के हिंदी में वक्तव्य और भाषण याद किए जाते हैं। और भी

ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं। युनेस्को के कार्य हिंदी में भी सम्पन्न होते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिदाद, सुरीनाम, लंदन, अमेरिका आदि स्थलों पर हिंदी का महत्त्व प्रतिपादित कर चुका है।

आज अनेक देशों, (जैसे दुबई, कनेडा, अमेरिका, इंग्लैंड, मॉरिशस, न्यूजिलैंड आदि) में हिन्दी की वसंत, पुरवाई आदि पत्रिकाएं लगातार निकल रही हैं और वे भी हिन्दी के बढ़ते कदमों में अच्छा योगदान कर रही हैं। ई पत्रिकाएँ भी काफी निकल रही हैं जैसे प्रयास, अभिव्यक्ति, अनूभूति आदि ।

आज पूरे विश्व में मूल भारतवंशी अथवा प्रवासी भारतीय हिन्दी की बढ़ोतरी में कई प्रकार से गतिशील हैं। वे साहित्य रच रहे हैं जिसे भारत के विश्वविद्यालय तक अपने पाठ्यक्रमों में रखकर उन्हें प्रोत्साहित कर रहे हैं । अनेक संस्थाएं उनके योगादन के लिए उन्हें पुरस्कृत भी कर रही हैं। इंग्लैंड में तो गीतांजलि आदि अनेक संस्थाएं हैं जो निरंतर हिन्दी संबंधी कार्यक्रम करती रहती हैं। कम ही सही लेकिन बहुत से प्रवासी भारतीय ऐसे भी हैं जो विदेशी भाषाओं के माहौल में भी अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाने के लिए व्यवस्था करते नजर आते हैं। ग्लोबल होती दुनिया ने भी हिन्दी के विकास में काफी योगदान किया है जो जारी है।

विश्व के स्तर पर हिन्दी के वेबजालों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। मीडिया और प्रोपेगेण्डा साहित्य से लेकर वार्तालापी हिन्दी (व्यावहारिक हिन्दी) की दिशा में तो जैसे विस्फोट सा हुआ है। हिन्दी चैनेलों की पहुँच उन देशों तक भी पहुँच चुकी है जहाँ पहले इस दृष्टि से भयंकर उजाड़ था। जैसे दक्षिण कोरिया।

दु:खद प्रसंग

इंग्लैंड में बसी और हिंदी शिक्षण से जुड़ी डॉ. वंदना मुकेश के पीड़ायुक्त तल्ख शब्द उद्धृत करने की इजाजत चहूंगा- "अत्यंत क्षोभ और दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि भारत में आज भी हिंदी गरीब और दीन की भाषा है। आज भी हम मानसिक गुलाम हैं। आज भी अंग्रेजी की चमक से हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं। कहीं न कहीं यह ग्रंथी है कि अंग्रेजी रौब की भाषा है, किसी पर प्रभाव डालना हो या आतंकित करना हो तो अंग्रेजी में बोलो।"[4] कवि और चिन्तक कृष्ण कुमार के अनुसार यूके में हिन्दी का पठन-पाठन आर्थिक कारणों से समाप्त किया जा चुका है। मोहनकांत गौतम के अनुसार नीदरलैंड में भी पतन हुआ है। स्वचालित संस्थाओं को अनुदान नहीं है। बांग्लादेश में स्वैच्छिक हिन्दी सेवी संस्थाओं का अभाव है। रूस में हिन्दी पढ़ा चुके राजेश कुमार का कहना है कि रूस में हिन्दी के विद्यार्थियों की संख्या घटी है। इसके लिए रूसी सरकार द्वारा उपेक्षा और भारत सरकार द्वारा अनदेखी जिम्मेदार हैं। एक समय था जब रूस में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन, आपसी अनुवाद और प्रकाशन की दृष्टि से समृद्ध परम्परा रही है। भीष्म साहनी, मदनलाल मधु, शिवदान सिंह चौहान, श्याम सिंह नेगी आदि का विशिष्ट योगदान रहा है।

शायद यह कहना अनुचित न होगा कि आज भी, भारत अन्य देशों की तुलना में (कारण कुछ भी हों) अपनी भाषा को लेकर उतना तत्पर नहीं है जितना हिन्दी को वैश्विक भाषा बनाने के लिए होना चाहिए।

भारतीय न्यायालयों में हिंदी की उपस्थिति, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान आदि सभी

विषयों के पुस्तकों के हिंदी में न होने का रुदन करने पर मजदूर दिखा करते हैं। आज भी हमारे देश की एक मात्र राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी नहीं है, भले ही राजभाषा और सम्पर्क भाषा हो।

व्यवसाय की दृष्टि से देखा जाए तो वकील और मुवक्किल या प्रार्थी अथवा आरोपी आदि आपस में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह आवश्यक रूप से अंग्रेजी नहीं होती। हमारी हिन्दी-फिल्मों में भी अदालतों के दृश्यों में प्राय: हिन्दी का ही प्रयोग होते दिखाया जाता है।

लेकिन असल जिन्दगी में, प्रार्थना-पत्र आदि के दाखिल करने से लेकर आगे की कार्यवाही और निर्णय प्राय: अंग्रेजी के वशीभूत होते हैं। जिन नागरिकों को अंग्रेजी नहीं आती वे वकील और व्यवस्था पर आस्था और भरोसे के रहम पर ही जीते रहते हैं।

हिन्दी और भारतीय भाषाओं के अन्तःसंबंधों की वास्तविकता को एक बार फिर पहचानना होगा। व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग भी है जो राष्ट्रभाषा या राजभाषा की समस्या को हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के संबंधों में न ढूँढकर मात्र हिन्दी और अंग्रेजी की प्रतिद्वंद्विता के रूप में उभारना चाहता है।' यह सिद्ध है कि भारत में भाषाओं की लड़ाई के पीछे, जो आज भी आंशिक रूप में ही सही एक हक़ीक़त है, स्वयं भाषाओं का हाथ नहीं है बल्कि कुछ और तत्वों का है जो विघटनकारी हैं, भारत की लम्बी और गहरी समन्वयवादी परम्परा के शत्रु हैं, राष्ट्रद्रोही हैं अथवा संकीर्ण हैं। भाषायी समन्वय राष्ट्र को मजबूत बनाता है। अतः भाषा का सच्चा काम लोगों को जोड़ने का होता है तोड़ने का नहीं।

हिंदी शिक्षण –देश और विदेश

शिक्षण को लेकर भी कुछ प्रश्न हैं जिन पर विचार हुआ भी है और हो भी रहा है। प्रश्न है कि हिंदी के मानक भाषा रूप को पढ़ाया जाए अथवा बोलचाल के रूप को अथवा किसी तीसरे रूप को। अलग-अलग देशों में हिंदी-शिक्षण की पद्धति क्या हो।

भाषा रूप

विदेशियों को शिक्षण के लिए हिंदी के रूप को लेकर जो प्रश्न उठता रहता है वह विचारणीय है। गांधी जी ने भारत के संदर्भ में हिंदुस्तानी के रूप में ऐसी हिंदी की हिमायत की थी जिसमें न जरूरत से ज्यादा अरबी लदी हो और न ही जरूरत से ज्यादा संस्कृत शब्दावली। हिंदी और उर्दू के मसले को उन्होंने धार्मिक साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर उठकर देखा था। हिंदी का एक मानकरूप माना जाता है और दूसरा बोलचाल का। सुविख्यात चैक भारतविद ओदोलन स्मेकल का दृढ़ मत मानक हिंदी सीखने की ओर जाता है। उनके अनुसार मानक हिंदी वह निखरी हुई, प्रांजल प्रभावशाली भाषा है जिसमें भारत की आत्मा परिलक्षित होती है। सड़क की भाषा को वे बोलचाल की भाषा कहते हैं जो अधिकांशत: संकर भाषा या बोली है। यह अलग बात है कि उन्होंने बोलचाल की हिंदी जानने की आवश्यकता को भी स्वीकार किया। दूसरी ओर ब्रजभाषा के विशेषज्ञ डॉ. रूपर्ट स्नेल का मत बोलचाल की भाषा के पक्ष में जाता है। स्नेल कबीर की तरह भाषा को बहता नीर मानते हैं न कि देवी की तरह शुद्ध और स्थिर।

इस प्रसंग के विस्तार में जाने के लिए मैं अपने लेख 'विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए सामग्री विकास' को पढ़ने की विनम्र सलह दे सकता हूं जो मेरी पुस्तक 'संवाद भी विवाद भी में प्रकाशित है।[5]

हिंदी-शिक्षण-सामग्री और हिंदी की व्याप्ति

हिंदी शिक्षण के लिए कुछ ऐसी सामग्री

अवश्य विकसित करनी चाहिए जो स्थानीय सँदर्भों में मूलभूत कही जा सकती है। जैसे त्रिनीडाड के हिंदी शिक्षार्थियों के लिए विशेष रूप से ऐसे शब्दकोश तैयार किए जाने चाहिए जो उनके अंग्रेजी रूप और हिंदी तथा हिंदी और उनके उच्चारण सहित अंग्रेजी रूप को जानने की आवश्यकता के पूरक हों। शब्दों में हिंदी के वे शब्द भी हों जो वहां के लोग घरों में प्रयोग में लाते हों। इसी प्रकार वाक्य रचना की जानकारी की पुस्तक, भारत और त्रिनीडाड के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, लोककथात्मक आदि संदर्भों को लेकर छोटे छोटे निबंधों की पुस्तकें अवश्य तैयार करनी चाहिए। सरल कविताओं तथा बाल कविताओं और कहांनियों के सँग्रह उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

सुषम बेदी के लेख 'अमेरिका में हिंदी शिक्षण : एक परिदृश्य'[6] हिंदी शिक्षण को लेकर अलग तरह की उलझन या चुनौती है। एक उलझन है हिंदी कक्षाओं में भारतीय मूल के विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या। लेखिका के शब्दों में –"यह भारतीय मूल के विद्यार्थी जब हिंदी की कक्षाओं में आने लगे तो इनके लिए हिंदी उस तरह की विदेशी भाषा नहीं रही थी जैसा कि दूसरे अमरीकियों के लिए थी।" वस्तुत: अमरीका आप्रवासियों का देश है और भारतीय आप्रवासियों की संख्या तीस लाख के करीब है।

हांगुक विश्वविद्यालय (कोरिया) में एक और व्यवस्थागत नया परिवर्तन हुआ है। जो विद्यार्थी अन्य विषयों के हैं उनके लिए भी हिन्दी पढ़ने की व्यवस्था कर दी गई है। अपनी पिछली यात्रा में मुझे हिन्दी के विद्यार्थियों ने बताया कि फ़िलहाल इटेलियन, चीनी, सुहाली, स्पैनिश और जापानी भाषाओं के कुछ विद्यार्थी हिन्दी भी सीख रहे हैं।

एक और जरूरी बात। विदेशों में हिंदी की पुस्तकें भेजते समय विशेष ध्यान रखना होगा कि केवल उत्कृष्ट साहित्य और पुस्तकें ही जाएं। बाजारवाद और भ्रष्टाचार के चलते अस्तरीय पुस्तकें पहुंचने के खतरे भी बने रहते हैं। इसी प्रकार वहां के पाठ्यक्रमों में निर्धारित करने के लिए पुस्तकों आदि की सलाह देते समय भी बहुत सतर्क रहना होगा– भाई-बंदी, गुटवादिता से ऊपर उठकर।

फिल्म आदि माध्यम और हिंदी

हिन्दी फिल्मों का पहले भी प्रभाव था लेकिन वह अब और अधिक बढ़ा है। यहाँ तक कि हिन्दी के प्रति या हिन्दी-अध्ययन को अधिक रोचक एवं दिलचस्प बनाने के लिए न केवल हिन्दी फिल्मों का सहारा लिया जाता है बल्कि हाल ही में हांगुक विश्वविद्यालय के योंगिन कैम्पस के हिन्दी के एसोसियेट प्रोफेसर डॉ. ई उंग गू ने मल्टीमीडिया हिन्दी-1 नामक पुस्तक[7] तैयार की है जिसमें उन्होंने एक लम्बी भूमिका तो लिखी ही है, हिन्दी फिल्मों और उनके गानों के सम्बन्ध में जानकारी भी दी गई है, साथ ही राष्ट्र गान के अतिरिक्त 37 पुराने-नए फिल्मी गानों का एक चयन भी प्रस्तुत किया है।

हिन्दी भाषा के शिक्षण को अधिक दिलचस्प ढंग से करना होगा। केवल पारम्परिक तरीकों से नहीं। हिन्दी शिक्षण के लिए भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने 'ऋषि' नामक सॉफ्टवेयर निकाला था। अनेक वेबसाइट भी हिन्दी शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। नार्थ कैलोलाईना विश्वविद्यालय की ओर से अपह्रोज ताज ने हिंदी शिक्षण की बेवसाइट तैयार की है। डॉ. सुरेंद्र गम्भीर ने बिजनेस की हिंदी सिखाने का वेबसाइट उपलब्ध कराया है। उनसे लाभ पहुँच रहा है।

अनुसंधान, शब्द कोश आदि

निश्चित रूप से चीन, कोरिया, जापान, इंग्लैंड. रूस आदि अनेक देशों में विदेशी हिंदी

जानकारों के द्वारा अंनुसंधान हुए हैं और हो रहे हैं। आज भारत में कितने ही प्रवासी हिंदी साहित्यकारों के साहित्य पर भी अनुसंधान हो रहे हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य की भी प्रमुखत: दो धाराएं हैं –एक उन साहित्यकारों के द्वारा लिखा साहित्य जिन्हें या जिनके पूर्वजों को श्रम के लिए गिरमिटिया बना कर दूर-दराज के देशों में बसाया गया था और दूसरा उन साहित्यकारों के द्वारा लिखा गया साहित्य जो अच्छे रोजगार और जीवन यापन के लिए स्वेच्छा से विदेशों में जा बसे हैं। यहां दोनों ही प्रकार के साहित्य के प्रति विशेष अध्ययन परक दृष्टि अपनानी पड़ेगी।

हिंदी पढने के कुछ कारण :

अमरीका के संदर्भ में पहले संकेत दिया जा चुका है कि वहां हिंदी पढ़ने का एक कारण भारतीय संस्कृति को गहरे से जानना है। मैंने कोरिया के संदर्भ में विशेष रूप से जानाना चाहा।

बातचीत के आधार पर ही कह सकता हूँ कि सर्वप्रमुख कारण तो भारत की संस्कृति, जीवन और दर्शन की गहरी जानकारी लेना है। भारतीय अर्थव्यवस्था में जो बदलाव आए हैं और जिस प्रकार वह विश्व के लिए खुलती गई है, उस कारण से भी कोरियाई नई पीढ़ी भारत और भारत की कोरिया में उपलब्ध भाषा हिन्दी की ओर उत्सुक हुई है।

अनुवाद और हिंदी

मेरी विनम्र राय में अनुवाद का मतलब एक भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा के शब्दों में रख देना मात्र नहीं होता। यहां आत्मा का अर्थात संस्कृति, पाठ आदि सब का अनुवाद करना होता है। और यह भी कि अनुवाद के माध्यम से एक भाषा मे लिखी रचना अन्य भाषा में पहुंचकर भी रचना ही लगनी चाहिए।

अब तो देश के बाहर न केवल अनुवाद के माध्यम से बल्कि रचनात्मक लेखन के द्वारा भी हिन्दी अग्रसित हो रही है। अनुवाद द्वारा प्रदत्त आदान-प्रदान की दिशा में बढ़ती कुछ अधिक सजगता एवं सक्रियता भी हिन्दी जानने के महत्त्व को बढ़ा रही हैं।

इस प्रसंग में इतना अवश्य जोड़ना चाहूँगा कि देश में एक उचित योजना के तहत हिन्दी में अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को उपलब्ध कराना होगा ताकि वह सब हिन्दी के माध्यम से विदेशों में पहुँचाया जा सके। विदेश के संदर्भ में हिंदी को ही भारत की भाषा के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकृति दिलानी होगी बिना किसी अन्य भारतीय भाषा के प्रति पूर्वाग्रही हुए।

अत: आज ज़रूरत है कुछ ऐसे बिन्दुओं की पहचान करना जिन पर चर्चा करते हुए ऐसी स्थितियों को प्राप्त किया जा सके जिनसे हिन्दी को हम उसके अपेक्षित दर्जे पर पहुंचा सकें । देश में भी और विस्व में भी।

अंत में मैं, सभी विदेशी हिंदी विद्वानों के साथ कुछ विदेशी हिंदी प्रेमियों और विद्वानों को जरूर पूरे आदर के साथ याद करना चाहूंगा, जैसे फादर कामिल बुल्के(बेल्जियम), तुलसी रामचरित मानस पर शोध करने वाले इतालवी विद्वान एल.पी. टेसीटरी, फ्रांस के विद्वान गार्सा दतासी, चीन में हिंदी के प्रचार के लिए जीवन भर समर्पित प्रो. च्यांग चिंग्ख्वेई, जापान में हिंदी के प्रचारक अकियो हागा, रूस के 1948 में रामचरित मानस के अनुवाद करने वाले अलेक्सेई पेत्रोविच बारान्निकोव, निराला आदि पर शोधपरक काम करने वाले रूसी विद्वान चेलिशेव, हिंदी के आधुनिक और नये साहित्य के विद्वान और अनुवादक डॉ. अलेक्साद्र सेंकेविच, कृष्ण

भक्ति काव्य परम्परा के मर्मज्ञ विद्वान और उस पर विस्तार से लिखने वाले तथा अनुवादक अंग्रेज विद्वान रूपर्ट स्नेल, इस्राइल के गेनारी स्लोम्पेर, भीष्म साहनी के तमस के अनुवादक और हिंदी-अध्यापन को समर्पित कोरिया के प्रो. ली जंग हो, चेक के हिंदी कवि और विद्वान डॉ. ओदोलेन स्मेकल तथा डच भाषा के हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण लिखने वाले विद्वान जान जेशुआ केटलर, पोलिश विद्वान प्रो. बृश्की, फीजी के श्री विवेकानंद शर्मा आदि। यूं इस सूची में भी कितने ही और नाम जोड़े जा सकते हैं, पर हर चीज की एक सीमा होती है और वह इस लेख की भी है।

सन्दर्भ सूची :

1. हिन्दी का वैश्विक स्वरूप, रेखा रानी, साहित्य यात्रा, अप्रैल-जून, 2015
2. जनसत्ता, दिल्ली, 29 अप्रैल, 2007, पृ.7
3. स्पैन, मार्च, अप्रैल, 2007, पृ0 12
4. वैश्विक हिंदी परिदृश्य, संपादक, कुमार गौरव मिश्रा, कविता सिंह चौहान, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 28
5. संवाद भी विवाद भी, दिविक रमेश, ग्रंथलोक, शाहदरा, दिल्ली-110032, 2008,पृ.106
6. वैश्विक हिंदी परिदृश्य, सं. कुमार गौरव मिश्रा,कविता सिंह चौहान, अनंग प्रकाशन,दिल्ली
7. Multimedia Hindi-1, E Ung Gu, 2003, E Mun Dong, Seoul, Korea

एल-1202, ग्रेंड अजनारा हेरिटेज,
सेक्टर-74, नोएडा,
उत्तर प्रदेश, भारत

5

विदेशों में हिन्दी का विकास

डॉ. निशा झा

डॉ. राम कृष्ण झा

हिन्दी सिर्फ भारत की ही राष्ट्र भाषा नहीं है बल्कि सूरीनाम, गुयाना, फिजी, त्रिनिदाद एवं मारिशस देशों की मूल निवासियों की भाषा है। इन देशों में भारी संख्या में भारतीय मूल के लोग रहते हैं एवं हिन्दी भाषी हैं। आधुनिक समय में तो ब्रिटेन, अमेरिका एवं रूस जैसे बड़े–बड़े देशों में भी हिन्दी के प्रति लोगों में विशेष रूझान हो गई है।

जैसा कि हम जानते हैं कि प्राचीन काल में समस्त एशिया के लिए 'इण्डिया' या भारत शब्द का प्रयोग होता है। लेकिन कालांतर में यह परिवर्तित होता गया। चूँकि प्राचीन एवं मध्यकाल में भारत का व्यापार विभिन्न देशों के साथ था। विदेशों से भी जो प्रशासक या धर्मप्रचारक आए थे उनका भी हिन्दी भाषा की ओर ध्यान था। पुर्तगाल हॉलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में भी हिन्दी साहित्य एवं भारतीय दर्शन की ओर विशेष ध्यान रहा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विविध राष्ट्रों के साथ भारत का सांस्कृतिक, धार्मिक एवं व्यापारिक संबंध बना रहा है।

स्वतंत्र भारत में 1967 में आम चुनाव होने के बाद राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि प्रमुख हिंदी भाषी क्षेत्र में वहाँ की सरकार ने हिन्दी में ही कार्य करने का संकल्प लिया था, अंग्रेजी भाषा से हिन्दी को अधिक महत्व देने के लिए छात्रों ने अंग्रेजी में लिखे साईन बोर्ड तक को बदलने का प्रयास किया था, एक अभियान चलाया था। कुछ क्षेत्रों में सरकार, जो मातृभाषा के महत्व को समझती थीं, उच्च परीक्षा में अंग्रेजी भाषा को एक वैकल्पिक विषय घोषित कर दिया। विधान सभा, सरकारी कार्यालय आदि जगहों पर हिन्दी में कार्य किये जाने लगे। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार ने भी हिन्दी के उत्थान के लिए कार्य किए। भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन ने शपथ के बाद अपना पहला भाषण हिन्दी में दिया जिससे भारतवासियों में हिन्दी के प्रति जागरूकता आई।

मुख्य रूप से हिन्दी के आज तीन स्वरूप हैं–

1. भारतीयों की मातृभाषा
2. राजभाषा
3. भारत से बाहर, यानि विदेशों में बसे हुए भारतीयों की भाषा।

आज हिन्दी का तीसरा रूप अधिक व्यापक रूप है क्योंकि यह विश्वव्यापी–''हिन्दी का तीसरा रूप सर्वाधिक व्यापक उसका विश्वभाषा वाला रूप है। मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम, श्रीलंका, इंडोनेशया, थाईलैंड और जापान को मिलाकर तीस ऐसे देश हैं जहाँ कई लाख की संख्या में भारतवासी बसे हुए हैं और आपसी व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हिन्दी आज विश्व की प्रमुख भाषाओं की पंक्ति में जा पहुँची है। उसके बोलने वालों की संख्या के अनुसार संसार में तीसरा स्थान हिन्दी का है। पिछले वर्षों में सम्पन्न हुए विश्व हिन्दी सम्मेलनों के कारण हिन्दी के इस तीसरे स्वरूप की चर्चा अधिक जोरों पर है।''[1]

ऐसे विश्व स्तरीय सम्मेलनों में हिन्दी के उन्नयन के लिए बहुत से मार्ग प्रशस्त होते हैं। दिनांक 10 जनवरी, 1975 से 14 जनवरी, 1975 तक नागपुर में विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ था। इसमें मॉरीशस, फिजी, सोवियत संघ, चेकोस्लोवाकिया, ट्रिनीडाड, कनाडा, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन आदि करीब 40 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा–''हिन्दी के विद्वान और लेखक भाषा की सरलता पर ध्यान दें जिससे वह जनता की भाषा का स्थान ले सके व दैनिक जीवन का अंग बन सके। यह तभी संभव है, जब हिन्दी के द्वारा सभी भाषाओं के

लिए खुले होंगे और वह उनके शब्द भाव आदि खपा सकने में समर्थ होगी। भारत की तथा विश्व की भाषा बनने के लिए ग्राह्यता शक्ति में संकोच नहीं करना चाहिए।''[2]

हिन्दी के विदेशी विद्वानों में डॉ. जार्ज आब्रह्म ग्रियर्सन, रेवरेंड जेड ब्लेर, एस.बी.डी. रुडोल्फ हार्नले, ग्रहाम वैली, डॉ. टैसीटोरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

1. डॉ. जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन–

''हिन्दी की बोलियों पर डॉ. जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन ने बहुत कार्य किया है। ''हिन्दी की बोलियों पर सबसे अधिक प्रामाणिक और व्यापक कार्य सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का है। भारत में ही नहीं, अनेक देशों में भी इससे पहले ऐसा कार्य नहीं हुआ था। उन्होंने जिस पद्धति को अपनाया वह आज भले ही दोषपूर्ण अथवा अपूर्ण कही जाए, किंतु पिछले 50 वर्ष तक यह कार्य बोलियों पर खोज करने वालों के लिए प्रकाश स्तम्भ रहा है।[3]

ग्रियर्सन ने बहुत से भाषाओं और बोलियों का ग्रामोफोन रेकार्ड तैयार किया ताकि प्रायोगिक रूप में इसका संरक्षण हो सके। वास्तव में ग्रियर्सन के सर्वेक्षण के पश्चात् हिन्दी की बोलियों का महत्वपूर्ण स्थान हो गया और इस भाषा के अनुशीलन एवं विश्लेषण के लिए विद्वानों का इस ओर विशिष्ट कार्य रहा इस संबंध में बीम्स, ग्रियर्सन, हार्नली आदि अनेक विद्वानों का कार्य अत्याधिक सराहनीय रहा। ग्रियर्सन ने करीब 30 वर्षों तक भाषा–सर्वेक्षण का कार्य किया। जो भारतीय भाषाओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुआ। वे ध्वनि की शुद्धता पर भी बहुत जोर देते थे। वे गहरी निष्ठा के साथ भारतीय भाषाओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुआ। वे ध्वनि की शुद्धता पर भी बहुत जोर देते थे। वे गहरी निष्ठा के साथ भारतीय भाषाओं का भाषा शास्त्रीय अनुशीलन किए।

2. डॉ. रूडोल्फ हार्नले–

डॉ. रूडोल्फ हार्नले ने 'ग्रामर ऑफ दि ईस्टर्न हिन्दी' ग्रंथ की रचना की इसमें पूरबी एवं भोजपुरी भाषा के संबंध में विस्तृत व्याख्या की गई है। इन्होंने उर्दू को भी हिन्दी के अंतर्गत माना है।

3. जॉन बीम्स–

कुछ विद्वान जैसे डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी आदि ने बीम्स महोदय को भारतीय भाषा विद्वान का संस्थापन माना है। वास्तव में भाषा–साहित्य, पुरातत्व एंव लोक साहित्य के क्षेत्र में जॉन बीम्स ने महत्वपूर्ण कार्य किये जिसके आधार पर आगे भी अनेक कार्य किए गए, अध्ययन किए गए। सन् 1858 ई0 में भारत में इनका आगमन हुआ था। इन्होंने 'भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण नामक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक तीन खंडों में प्रकाशित हुआ। बीम्स के कार्य के आधार पर वियना की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के लिए सुझाव दिया गया।

4. डॉ. एल.पी. टैसीटोरी–

ग्रियर्सन ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अनेक कार्य किया। ग्रियर्सन के इस कार्य को, बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. एल.पी. टैसीटोरी ने कुशलता पूर्वक आगे बढ़ाया। इन्होंने अनेक शिलालेखों के छापे को भी संग्रहित किया। इन्होंने अनेक देशों में हिन्दी भाषा से संबंधित शोध सामग्री को प्रकाशित कराया।

हिन्दी के महत्व को विदेशी विद्वानों ने बहुत पहले ही पहचाना और उसमें उन्होंने विभिन्न प्रकार के लेखन कार्य करने का प्रयास किया है। विदेशों के इस ऐतिहासिक योगदान का आरंभ 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू होकर निरन्तर विकास को प्राप्त करता गया है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में अंग्रेजी विद्वानों के अतिरिक्त रूसी, जर्मन, अमरीकी चेक तथा फ्रेंच विद्वानों का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। आरंभ में हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक बुनियादी भाषिकीय सामग्री, जैसे व्याकरण कोष एवं वैज्ञानिक ढंग की पाठ्यपुस्तकें आदि के निर्माण में विशेष ध्यान दिया गया था। इस दिशा में भारत में पहुँचे विदेशी प्रशासकों एवं धर्म–प्रचारकों का विशिष्ट योगदान है।

आगे चलकर विदेशियों ने हिन्दी में गंभीर अनुसंधान कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप, फ्रेंच, अंग्रेजी भाषाओं में हिन्दी साहित्य के

प्रारंभिक इतिहास लिखे गए और दुनिया की अनेक भाषाओं में हिन्दी भाषा एवं साहित्य से संबंधित अनेक शोधपरक ग्रंथ प्रस्तुत किए जा सके। सृजनात्मक, लेखन के क्षेत्र में यद्यपि यूरोपीय लेखकों का योगदान कम महत्व का नहीं है फिर भी 'मॉटीशस, फिजी जैसे देशों के भारतीय मूल के लेखकों की सृजनात्मक रचनाएँ काफी उच्च स्तरीय हैं।''[4]

भारत में सदा से शब्द को ब्रह्म माना गया है। इसलिए शास्त्रों में, जहाँ शब्दों का वर्णन है वहाँ व्याकरण एवं शब्द कोष का भी अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशी विद्वानों ने भी हिन्दी शब्द कोषों पर अनुसंधान किया और ग्रंथ लिखा जिसे 'शब्दकोष' कहा गया इसमें यूरोपीय विद्वानों की महत्वपूर्ण भूमिका रहीं। चूँकि भारत में विदेशों से भी बहुत धर्म प्रचारक एवं विद्वान भाषाविद् आए थे, उनलोगों ने भी नई–नई पद्धतियों से 'कोष' का निर्माण किया जिनमें कुछ प्रमुख कोष निम्नांकित हैं–

क्रमांक	कोषकार का नाम	कोष का परिचय
1	जे. फर्गुसन	हिन्दुस्तानी भाषा का कोष : सन 1773 में रोमन अक्षरों में प्रकाशित
2	गिलक्राइस्ट	हिन्दुस्तानी–अंग्रेजी शब्द संग्रह, सन 1798 में प्रकाशित, 1000 शब्द
3	विलियम हंटर	हिन्दुस्तानी–अंग्रेजी शब्द कोष रोमन, सन 1808 में प्रकाशित
4	कैप्टन प्राइस	प्रेमसागर का शब्द भण्डार
5	डंकन फोर्ब्स	हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी कोष, सन 1848
6	एम.डब्ल्यू फालन	हिन्दुस्तारी शब्द कोष
7	ए.टी.प्लांट्स	उर्दू हिन्दी–अंग्रेजी कोष 1884 ई.।

[5]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी विद्वानों ने हिन्दी भाषा को समृद्ध करने के लिए शब्द संपत्ति को संग्रहित किया। शब्दों की प्रधानता को ध्यान में रखकर 4000 शब्दों की सूची को 1937 में प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

हिन्दी के कुछ बोलियों के कोष बने हैं। नोट्स एण्ड ए शार्ट वोकेबुलरी ऑफ दि हिंदुवी डाइलेक्ट ऑफ बुन्देलखंड (Notes and a short vocabulary of the Hindavee dialect of Bundelkhand)[6]

अमेरिका, सोवियत संघ, पश्चिमी जर्मनी आदि देशों में हिन्दी की समृद्धि के लिए अध्यापन का कार्य भी हो रहा है जिनमें कुछ प्रमुख संस्थान इस प्रकार हैं।

अमेरिका

1. क्लेयरमेण्ड ग्रेडुवेट स्कूल, कॉलिफोर्निया।
2. जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय, बल्टिमोर, मेरीलैण्ड।
3. हवाई विश्वविद्यालय, हॉनोलुलु।
4. अरीजोना विश्वविद्यालय, टसकन, अरिजोना।
5. शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो, इलिनायसं
6. मिशिगन स्टेट विश्वविद्यालय, पूर्व लान्सिंग, मिशिगन।
7. सराह लौरेन्स कॉलेज, ब्राकेसविल, न्यूयार्क।
8. अमेरिकन विश्वविद्यालय, वाशिंगटन, डी.सी.।
9. कोर्नल विश्वविद्यालय, इशाका, न्यूयार्क।
10. कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क।

सोवियत संघ –

1. मॉस्को विश्वविद्यालय
2. लेनिनग्राद स्टेट युनिवर्सिटी
3. ताशकंद स्टेट युनिवर्सिटी

पश्चिम जर्मनी

1. सेमिनार फुष्ट कन्डीथे फिलॉलाजी फ्रैई युनिवर्सिटाट, बर्लिन।
2. ओरियण्टालिवेस सेमिनार, युनिवेर्सिटेट, फ्रीबर्ग।
3. सुवेडासीन, इन्स्टिट्यूट डेर यूनिवेर्सिटेट, हीडलबर्ग।

कुछ अन्य देशों में हिन्दी अध्ययन केन्द्र

1. अरजेन्टीना–सालवाडोर नेशनल युनिवर्सिटी, केनबेरा
2. बेल्जिम–ब्रसेल्स विश्वविद्यालय
3. आस्ट्रेलिया– ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी, कैनबेरा,
   मेलबोर्न विश्वविद्यालय, मेलबोर्न।
4. कनाडा–ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय, आदिं
5. चीन –पीकिंग विश्वविद्यालय
   विदेशी भाषा संस्थन, शाघाई
6. चेकोस्लेवाकिया– चार्ल्स विश्वविद्यालय, प्राहा
   विदेशी भाषा संस्थान, प्राहा
7. मेक्सिको– एल कोलेजियो दे मेक्सिको
8. नेपाल –त्रिभुवन विश्वविद्यालय
9. नार्वे –ऑस्लो विश्वविद्यालय
10. नेदरलैंड्स–लीडन का विश्वविद्यालय
11. जापान –तोक्यो विश्वविद्यालय, तोक्यो
    ओसाका विश्वविद्यालय, ओसाका
12. डेनमार्क –कोपेनहेगन कोल्क, यूनिवर्सिटी, डेनमार्क
13. ईरान– तेहरान विश्वविद्यालय, तेहरान
14. मॉरिशस–महात्मा गाँधी संस्थान, मॉरिशस
15. अफगानिस्तान –अमेरिकन इंटरनेशनल स्कूल, काबुल
16. दक्षिणी अफ्रीका– एम.एल.सुस्लान टैक्निकल कॉलेज
17. डर्बन –वेस्ट विश्वविद्यालय
18. दक्षिणी अमेरिका–आर्य प्रचार सभा, गाईना।
19. कोरिया गणराज्य –हॉकूक विश्वविद्यालय।

इस प्रकार आज भारतीय भाषा हिन्दी की पढ़ाई, विदेशों में भी पर्याप्त रूप से हो रही है। इसमें विदेशी विद्वानों का बहुत योगदान है।

हिन्दी के विकास में विदेशी विश्वविद्यालयों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विदेशों में 'हिन्दी' विषय पर भी अनेक शोध कार्य हुए हैं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है[7]–

क्र०	शोधार्थी	विश्वविद्यालय	शोध विषय	वर्ष
1	जेगीस	इलिनॉयस विश्वविद्यालय	सब्जेक्ट कांटिलमेंटेषन विद् कौजेटिव वेर्ब्स	1971
2	ए0बी0	अरबाना	स्म आस्पेक्ट्स ऑफ द कौजेटिव कन्स्ट्रक्शन्स इन हिन्दी।	1971
3	जे0डी0मक्कोले	शिकागों लिंग्विस्टिक सोसायटी	लेक्सिकल इनसरटेशन्स इन ए ट्रान्सफोरमेशनल ग्रामर विदाउट डीप स्ट्रक्चर्स	1968
4	जे0डी0मक्कोले	इलिनॉयस विश्वविद्यालय	पेपर्स ओन हिन्दी सिन्स्टेक्स	1966
5	सूसन के0 डोनाल्डसन	इलिनॉयस विश्वविद्यालय	मूवमन्ट्स इन स्ट्रिक्टिव रेरिलेटिव क्लॉसेस इन हिन्दी	1971
6	स्मिथ रिचर्ड	कोर्नल विश्वविद्यालय	ए कम्पारिजन ऑफ अवधी एण्ड कनौजी टू हिन्दी डायलेकट्स	
7	आर.आर.मूर	मिशिगन विश्वविद्यालय, अमेरिका	ए स्टडी ऑफ हिन्दी इन्टोनेशन	1915
8	लूडो रोचर	घेंट विश्वविद्यालय	मनुवल ऑफ मॉडर्न हिन्दी	1958
9	ब्लादिमर मिलटनर	चेकोस्लोवाकिया	तुलसीदास की कृतियों में हिन्दी की वाक्य रचना थियरी ऑफ हिन्दी सिन्टेक्स डिस्क्रिप्टिव, जेनेरिटिव, ट्रांसफोरमेशनल	1970

इस प्रकार हिन्दी विषय से संबंधित अनेक शोध कार्य विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों में भी प्रकाशित होते रहे हैं।

उपर्युक्त शोध–कार्यों के प्रकाशन के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के व्याकरण पर भी अनेक शोध–कार्य

हुए हैं, जो निम्नांकित हैं[8] –

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम
1	हिन्दुस्तारी व्याकरण	जॉन जोश्या वेकटलयर
2	लतिनी–हिन्दुस्तानी–फारसी धातु पाठ	जॉन जोश्या वेकटलयर
3	हिन्दुस्तानी व्याकरण	बन्जेमिन शल्ट्स
4	ग्रामेटिकल रिमार्क्स ऑन दि प्रैक्टिकल एण्ड बल्गर डायलेक्ट्स ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंवेज	जार्ज हैडले
5	हिन्दुई भाषा के मूल तत्व	गासाँ द तासी
6	हिन्दी हिन्दुई मुन्तरवबात	गासाँ द तासी
7	हिन्दी रोमन ओर्थो एपिकल अल्टीमाटम	डॉ. जॉन गिलक्राईस्ट
8	चार्लस स्टीवर्ट का व्याकरण	चार्ल्स स्टीवर्ट
9	ग्रामर ऑफ थ्री प्रिन्सिपल लैंग्वेज : हिन्दुस्तानी, परशियन एण्ड अरबिक	विलियम प्राइस
10	इंट्रोडेक्शन टु द हिन्दुस्तानी लैंग्वेजेज	विलियम यिट्स
11	ए काम्प्रिहेन्सिव सिनॉक्सिस ऑफ द एलिमेण्ट ऑफ हिन्दुस्तानी ग्रामर	डॅब्ल्यू. एन्ड्रे
12	बोलचाल की हिन्दुस्तानी	ई. एच. रोजर्स
13	ए न्यू सेल्फ इंस्ट्रक्टिंग ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी टंग	सेंट ऑफ आरनोट
14	हिन्दुस्तानी भाषा कैसे सीखें	एफ. आर. चैपमेन
15	हिन्दुस्तानी कोनवरसेशन ग्रामर	रेवरेंड टिसेड़ल
16	हिन्दुस्तानी गाइड	जार्ज एच.ए .रेंकिंग
17	ए . कन्साइज ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी, लैंग्वेज	ई.बी.ईस्टविक
18	हिन्दुस्तानी व्याकरण	पादरी एडम
19	ऐ ग्रामर ऑफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज	जॉन शैक्सपीयर
20	हिन्दुस्तानी मानुवल	डॉ. डंकन फोब्स
21	एलीमेंट्स आूफ हिन्दी एंड ब्रजभाशा ग्रामर	जेम्स और वेलेन्टैन
22	हिन्दुस्तानी अध्ययन	डॉ. मोनियर विलियम्स
23	भाषा भास्कर	रेवरेंड, डैब्ल्यू एथरिंगटन
24	हिन्दी व्याकरण	रेवरेंड एडबिन
25	हेल्प टू दि अटेन्मेंट ऑफ हिन्दुस्तानी इंडियंस	डॉ. विलयम डूगर
26	ग्रामर ऑफ दि जैंडियन लैंग्वेजेज	रूडोल्फ हार्नले
27	क्येरेटिव ग्रामर ऑु दि मार्डन आर्यन लैंग्वेजेज ऑफ इंडिया	जान बीम्स
28	कनसाईस ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज	रेवरेंड एच0जी0शालवर्ग
29	फ्लैट्स ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज	जॉन टी प्लाइट्स
30	हिन्दुस्तानी स्टब्लिंग ब्लाक सिन्टेक्स ऑन हिन्दी एंड उर्दू	फीलॉट
31	अरबी हिंदी मॉर्फोलाजी एण्ड सिन्टेक्स	मिलटनर बी.
32	थियरी ऑफ हिन्दी सिन्टेक्स : डिंस्क्रिप्टिव, जेनेरेटिव, ट्रान्सफोरमेशनल	मिलटनर बी.
33	टोपिक्स इन हिन्दी उर्दू ग्रैमर	प्रेब्रस आर

34	ए कनसाइज ग्रामर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेज	स्कोलवर्ग एच.सी.
35	एन आउटलाईन ऑफ हिन्दी ग्रामर	आर.एस.मकग्रेगर
36	हिन्दी ग्रामर एंड रीडर	एर्नस्ट बन्डर
37	हिन्दी व्याकरण	ए . गाबा
38	हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा	डॉ. दीमशित्स
39	ए ट्रान्सफौरमेशनल ग्रामर ऑफ हिन्दी	जॉन बी0 सैन्डर्स

हिन्दी भाषा के उन्नयन में, सम्रद्धि में बहुत से देशों के विद्वानों का योगदान है जैसे–रूस के डॉ. ई. पी. चेलिशेव, सोवियत संघ के डॉ. पल. ए.वारान्निकोव, पश्चिम जर्मनी के डॉ. लोठार तुत्से, ब्रिटेन के डॉ. आर. एस. मकमेगर, जापान के प्रो. के. दोई, चेकोस्लोवाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेकल, फ्रांस के डॉ. निकोल बलबीर, इटली के प्रो. एन.सी. तुरवियानी और पोलैंड की प्रो. तातियाना रूथकोव्यस्का। इन विद्वानों ने हिन्दी के सृजनात्मक लेखन एवं नित नये साहित्य के उदय के मार्ग को प्रशस्त किया जिसके कारण हिन्दी साहित्य में श्रीवृद्धि हुई। इन विद्वानों ने कविता, कथा–साहित्य, निबंध एवं आलोचना आदि सभी विषयों पर गहन चिंतन किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुस्तकों के निर्माण एवं अध्ययन–अध्यापन आदि के क्षेत्र में विदेशी विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन एवं विकास में नवीन सामग्रियों जैसे ध्वनि, रूप, वाक्यविन्यास तथा कर्म सबंधित ज्ञान की प्राप्ति के लिए विशिष्ट सहायता मिली है। वास्तव में हिन्दी भाषा के उन्नयन में, अध्यापन में वैज्ञानिक तरीके के प्रयोग का श्रेय विदेशी हिन्दी सेवकों को ही जाता है।

आज मॉरीशस, फिजी आदि देशों में हिन्दी मौलिक साहित्य सृजन विस्तृत रूप में हो रहा है। भारतीय हिन्दी सेवक के साथ–साथ विदेशी हिन्दी सेवक के गहन, चिन्तन, मनन के कारण ही, हिन्दी आज विश्व पटल पर छाई हुई है। आज ऐसे विद्वानों के कार्यों का मूल्यांकन भी होना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ

1. गौड़, आर. एन. हिन्दी निबंध, राजहंस प्रकाशन मंदिर, मेरठ, 2003 पृ0–147
2. वही, पृ0–234
3. हरदेव वाहरी, हिन्दी : उद्‌भव, विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद 1970 ई., पृ0 299
4. आस्टिन जोस, हिन्दी के विकास में विदेशी विद्वानों का योगदान, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ० 83
5. वही, पृ0 160–161
6. तिवारी, भोलानाथ, लेख 'भाषा', हिन्दी कोषों की परम्परा–2, दिसम्बर, 1967, पृ0 28
7. आस्टिन, जोस, हिन्दी के विकास में विदेशी विद्वानों का योगदान, पृ0 124–128
8. वही, 157–158

[1]पूर्व विभागाध्यक्ष
विश्वविद्यालय संगीत विभाग,
ति०मां० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
[2]प्राचार्य
डॉ० रघुवीर सिंह शासकीय महाविद्यालय
सीतामऊ, मंदसौर

6 विदेशों में भारतीय संस्कृति की संवाहक हिंदी : मॉरीशसीय संदर्भ में

डॉ. अलका धनपत

दंडी ने अपने काव्यादर्श में लिखा है कि यदि शब्द की ज्योति ना जलती तो तीनों भुवनों में घना अंधकार होता। (काव्यादर्श 1:4) यह सत्य है कि सभ्यता और ज्ञान के विकास में भाषाओं की भूमिका अप्रतिम रही है। ज्ञान का संचित रूप तथा ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य भाषा ने ही किया है। हमारे अनुभवों, संस्कारों, मनोदशाओं तथा प्रवृतियों का विकास भाषा से ही संभव है। 'भाषा और जाति का घनिष्ठ संबंध है। यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं को बोलनेवालों की अवधारणाओं और कल्पनाओं में अंतर होता है । इसलिए विभिन्न भाषाओं के पर्याय एक नहीं होते। उनसे जातियों के मनोविज्ञान को समझने में सहायता मिलती है क्योंकि किसी भी जाति की भाषा संबंधी आदतें उसके अवचेतन को निर्मित करती हैं।'

(गोविंद चातक, पृ -156, 1994)

भाषा में प्रयुक्त शब्दों को अर्थ किसी व्यक्ति विशेष की संस्कृति ही प्रदान करती है । उदाहरणस्वरूप भोजनभट्ट शब्द बोलते ही महाभारत के भीम का स्मरण हो आता है। दीपक का प्रयोग लगभग सभी सभ्यताओं में होता था पर भारतीय संस्कृति की देवनागरी लिपि की भाषाओं में दीपक का अर्थ ज्ञान, अध्यात्म, ज्योति, तपस्या, संघर्ष तथा साधना आदि भी है । भाषा अपने सामाजिक सरोकारों से समृद्ध होती है।

किसी भी भाषा का प्रयोग उस समाज की व्यवस्था, परंपरा, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा अर्थात उस जाति की संस्कृति पर निर्भर करता है। व्यक्ति की भाषा में मानो उस उस विशेष समुदाय की वाणी बोलती है । मॉरीशस में यदि कोई गुरुजी बोलता है तो निश्चित ही वह एक हिंदी अध्यापक के लिए प्रयुक्त होता है । इसीलिए मॉरीशस में यह वाक्य बड़ा प्रसिद्ध है: 'भाषा गई तो संस्कृति गई।'

विदेशों में आज हिंदी भारतीय संस्कृति की संवाहिका के रूप में कार्य कर रही है । आज मिथक, पुराण, धर्म, नीति, दर्शन, गणित, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जिनका आधार संस्कृत भाषा थी, आज हिंदी में भी उपलब्ध हैं । वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत फिर पालि-प्राकृत तथा अपभ्रंश से हिंदी की बोलियों में खड़ी-बोली और फिर उसके मानक रूप ने भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार खूब किया है। मानस, महाभारत, वेद, टी वी धारावाहिक (धार्मिक)आदि ने हिंदी के माध्यम से भारतीय संकृति के प्रति जिज्ञासा तथा उत्साह को बढ़ाया है । 'अनेक मानव जातियों, उनकी भाषाओं एवम् भाषाई-दक्षता का अध्ययन करने के उपरांत अब भाषा विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मानव-जाति या उसकी शरीर-रचना का भाषा से कोई सीध्स्स या सापेक्ष संबंध नहीं है।' (डॉ. रेड्डी, पृ -11)

संस्कृति की संवाहिका भाषा होती है, जिन देशों में भारतीय आप्रवासी या भारतीय गिरमिटिया मज़दूर जाकर बसे, वहाँ पर भारतीय संस्कृति के अनेक जीवंत रूप देखने को मिलते हैं । सूरीनाम में सरनामी, फिजी में फिजीबात तथा मॉरीशस में हिंदी का प्रयोग होता है । हमारे संस्कार हमारी संस्कृति के बिंबों और हमारी भाषा में उजागर होते हैं।'मनुष्य का कोई अनुभव भाषातीत नहीं होता; ठीक उसी तरह समय में भोगा हुआ कोई अनुभव समयाश्रित नहीं होता-वह कभी नहीं मरता और बार-बार अपने को दोहराता है।'

(निर्मल वर्मा, पृ -11, 1995)

संस्कृति शब्द से किसी भी भूखंड की मानसिक क्षमता तथा प्रगति का एक लंबा इतिहास पता चलता है, व्यक्ति के मन, शरीर तथा आत्मा से संबन्धित प्राकृतिक

शक्तियाँ संस्कृति के रूपों से ही परिवर्धित तथा परिमार्जित होती है। अपने समाज के विकास के लिए मानव समुदाय जो मार्ग चुनता है, वही उसकी संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है। मनुष्य की प्रत्येक सम्यक कृति या कार्य-कलाप उसकी संस्कृति के रूप ही होते हैं। 'वे सारी अभिव्यक्तियाँ ही संस्कृति हैं, जो मनुष्य को मानसिक, आत्मिक और बौद्धिक विशिष्टता प्रदान करती हैं। यह संस्कृति तो किसी भी देश के ज्ञात अथवा अज्ञात असंख्य व्यक्तियों के दीर्घकालीन कष्टसाध्य प्रयत्नों के परिणाम से पल्लवित-पुष्पित होती है।' (डॉ. प्रीति प्रभा, पृ-2)

वस्तुत: जो भारतीय विदेशों में किसी भी कारण से गए, अपनी अस्मिता तथा अस्तित्व को जीवित रखने के लिए उन्होंने अपनी भाषा हिंदी का सहारा लिया। वे अपने भावी पीढ़ी को भी हिंदी के रूप में अपनी संस्कृति का पाठ पढ़ाना ना भूले। आज दुनिया में जहां भी भारतीय अधिक हैं, वहाँ उनके बच्चों के लिए स्कूलों में हिंदी विषय भी मिल रहा है। यदि विषय के रूप में नहीं मिल पाया तो वे आपस में इसका प्रबन्ध कराते हैं। इस हिंदी ने विदेशों में भारतीय संस्कृति का परचम फहराया। मॉरीशस इसका ज्वलंत उदाहरण है। आज मॉरीशस लघु भारत के रूप में अपनी विशेष पहचान रखता है।

हज़ारों सालों तक समुद्र में ज्वालामुखी के उबलते लावे के ठंडा होने पर मॉरीशस टापू का स्वरूप बना। इस टापू पर प्रारंभ में अरब, पुर्तगीज़, डच आदि कुछ समय के लिए रहे। बाद में फ्रांस का शासन यहाँ पर सन् 1715 - 1810 तक रहा। फ्रेंच आधिपत्य की समाप्ति के बाद अंग्रेज़ों का शासन प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में पास के टापू मेडागास्कर से गुलामों को खरीद कर, कार्य हेतु लाया जाता था। गुलामी प्रथा की समाप्ति के साथ ही इन गुलामों ने खेतों में कार्य करने से इंकार कर दिया तथा वे समुद्र-तटीय इलाकों में स्वतंत्र रूप से रहने लगे। इधर भारत में बढ़ते भूमिकर के कारण हज़ारों भारतीय आर्थिक संकट से गुज़र रहे थे। इन कठिन परिस्थितियों का अंग्रेज़ों ने लाभ उठाया। एक गिरमिटिया या शर्तबंद प्रथा के अन्तरगत हज़ारों अनपढ़, सरल तथा गरीब भारतीयों जो बिहार तथा उत्तर प्रदेश से थे, यहाँ लाया गया।

ऐजेंट उनसे कहा करते थे कि यह वह टापू है जहाँ पत्थर उलटने पर सोना मिलता है। जीवन स्तर को अच्छा बनाने की इच्छा ने इन गरीबों को मॉरीशस आने के लिए उत्प्रेरित किया। लेकिन यहाँ आने पर उनके साथ व्यवहार गुलामों की तरह ही किया गया। पाँच वर्ष के अनुबंध के अंतर्गत ये यहाँ आते थे जिसमें भोजन, कपड़ा तथा घर का एग्रीमेंट था तथा हर महीने पाँच रुपया मज़दूर की आय थी। एक रुपया प्रति माह उसकी आय से काटा जाता था ताकि जब वह शर्तबंदी के बाद वापिस जाएगा तो इसी राशि से उसके जहाज़ का किराया चुकाया जाएगा। इन गिरमिटिया मज़दूरों को शूगर इस्टेट में गन्ने की खेती के लिए लाया गया था।

सन् 1834 से 1854 तक मॉरीशस में 4,54000 गिरमिटिया मज़दूर पहुँचाए जा चुके थे। इन बीस वर्षों में दो तिहाई यहीं बस गए तथा कुछ ही लौटे।

पोर्ट लुइस बंदरगाह के उत्तर में स्थित 'तूह फ़ॉफ़ारों' (Trou Fanfaron) पर आप्रवासी घाट स्थित है। इसे 'इमीग्रांट्स लैंडिग गेट' भी कहते हैं। आज यह विश्व धरोहर (2006) में गिना जाने वाला स्थान है। यह 'कुली घाट' या आप्रवासी घाट पर्यटकों के लिए भी दर्शनीय स्थल है।

इस कुली घाट की 16 सीढ़ियों से चढ़कर कुली मॉरीशस में प्रवेश करते थे। यहाँ पर वे स्नान करते थे। यहीं से उनके कार्य स्थल का बँटवारा होता था। तब उन्हें अलग-अलग शूगर कोठियों के मालिकों के पास भेजा जाता था। उनके कार्य का सफ़र बड़ा ही कठोर होता था। उनकी कहीं सुनवाई नहीं होती थी। बस इन कठिन दिनों में वे अपनी भाषा भोजपुरी तथा कुछ धार्मिक ग्रन्थों का पारायण, अपनी शाम की बैठकाओं में किया करते थे। इन सबने उन्हें उन कठिन दिनों में काफ़ी शक्ति दी थी। इन गिरमिटियों की सुधार यात्रा लगभग 1901 से ही शुरू होती है।

मॉरीशस में एक समाज सुधारक के रूप में सर्वप्रथम जागृति के बीज वपन करने वाले महात्मा गांधी ही थे। गांधी जी ने 29 अक्तूबर सन् 1901 में पोर्ट लुई के बंदरगाह में प्रवेश किया । मॉरीशस में उनका प्रवास केवल 18 दिनों का रहा । नौशेरा जहाज जिससे वे आए थे, उसमें कुछ तकनीकी खराबी आ गई थी । उस समय मॉरीशस में भयानक महामारी (1899) बूबोनिक प्लेग बुरी तरह से फैली हुई थी । हज़ारों लोग काल कवलित हो रहे थे । शायद इसीलिए गांधी की सभाएँ या सम्मेलन सार्वजनिक रूप से नहीं हुए । मॉरीशस के मुसलमान व्यापारियों ने उनसे भेंट की तथा एक प्रीति-भोज भी रखा। वे तात्कालिक गवर्नर से भी मिले।

इन मुलाकातों में उन्हें भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की स्थिति का भान हो गया था । उन्होंने अपनी बातचीत में दो बातों पर ज़ोर दिया कि भारतीयों को अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलानी चाहिए तथा सक्रिय होकर देश की राजनीति में भाग लेना चाहिए । उनकी इन दो बातों को भारतीयों ने मूलमंत्र की तरह माना था । इन दोनों बातों पर लोगों ने अमल किया । गांधी जी ने भारतीयों के हितार्थ मणिलाल डॉ. को 1907 में मॉरीशस भेजा । भारतीयों को यह एहसास होने लगा कि इस मिट्टी में उन्होंने अपना खून-पसीना बहाया है अत: इस देश के राजनीतिक भाग्य-निर्माण में उनका भी योगदान होना चाहिए । बिना जागृति के सुधार की संभावनाएँ तथा स्वप्न कभी पूरे नहीं हो सकते । जागृति से संघर्ष जन्म लेता है और संघर्ष ही समाज में परिवर्तन लाता है ।

मणिलाल डॉ. को भारतीय गिरमिटियों या आप्रवासी 'भारतीयों का मुक्तिदाता' नाम से याद किया जाता है। गांधी जी के आग्रह पर सन् 1907 में वे मॉरीशस में भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध कार्य करने के लिए आए थे । वे पेशे से वकील थे तथा हिन्दी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच तथा गुजराती भाषा के जानकार थे । सन् 1909 में उन्होंने 'हिंदुस्तानी' नामक पत्र का भी प्रकाशन किया, जिसका उद्देश्य भी इन अत्याचारों का पर्दाफ़ाश करना था। सन् 1910 में उन्होंने मॉरीशस में आर्य-सभा की भी स्थापना की ।

इस सभा ने आगे के वर्षों में जन जागृति का अप्रतिम कार्य किया । गोखले को लिखे एक पत्र में गांधी जी लिखते हैं–*'श्री मणिलाल डॉक्टर ने मॉरीशस में सार्वजनिक क्षेत्र में बहुत ही अच्छा काम किया और निर्धन भारतीयों का स्नेह प्राप्त किया और वह उनके लिए आवश्यकता पड़ने पर सच्चे मित्र सिद्ध हुए ।'*

(महात्मा गांधी वाङ्मय)

प्रह्लाद रामशरण लिखते हैं–*'19 सवीं सदी के उत्तरार्द्ध में लगभग 50 वर्षों के गहन अंधकार से गुज़रने के बाद, मॉरीशस का भारतीय समुदाय 20वीं सदी के प्रारम्भ में एक नए भोर की प्रतीक्षा कर रहा था । 1898 में प्रथम बंगाल इन्फ़ैन्ट्री का आगमन एक प्रकार का वरदान ही था, क्योंकि इसका एक सिपाही अपने साथ स्वामी दयानंद की पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' लाया था । इस पुस्तक ने यहाँ आर्य समाज के बीज बोए । सन् 1901में गांधी जी यहाँ से गुज़रे । सन् 1907 में मणिलाल डॉक्टर को उन्होंने यहाँ भेजा।'* *(इन्द्रधनुष, पृ० ७)*

मॉरीशस में जनजागृति अनेक समाज सुधारकों के प्रयत्नों से ही संभव हो पाई । इसमें अधिकांशत: पुरुष वर्ग से ही थे । शिवसागर रामगुलाम, शिव गोविंद, मोहनलाल मोहित, अनत बीजाधर, बासुदेव विष्णुदयाल, जय नारायण रॉय, सुकदेव विष्णुदयाल, किसुन सिंह, प्रो. रामप्रकाश, हज़ारी सिंह, तिलक परसाद कालीचरण, पं. आत्माराम आदि ने विदेशों में अध्ययन कर, १९३० के बाद देश की राजनीति-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेना शुरू किया । इनमें एक वर्ग पूरी तरह से भाषा तथा संस्कृति की रक्षा, प्रचार-प्रसार तथा उसके गौरव के लिए कार्यरत था जिनमें प्रो. रामप्रकाश, सोमदत्त बखोरी, अनत, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, काशीनाथ किष्टो आदि आते हैं। एक पूरा पुरुष वर्ग देश में विकास, औद्योगीकरण, शिक्षा, आदि के प्रचार-प्रसार में लगा था । देशवासियों के हितों के लिए आज़ादी के बाद अनेक

योजनाएँ लागू की गईं। इन सभी में राष्ट्र सेवा का भाव था।

भारतीय समुदाय के बीच डॉ. झगरु शिवगोविंद पहले हिन्दी बोलने वाले डॉक्टर थे जबकि उनकी शिक्षा पेरिस तथा फ्रेंच भाषा में हुई थी।

सन् 1936–1961 तक वे सरकारी पद पर रहते हुए गरीब तथा दूर-दराज़ में रहने वाले ग्रामीणों की सेवा करते रहे। उन्होंने बहुत सी शैक्षणिक तथा सेवापूर्ण-संस्थाओं की अध्यक्षता भी की तथा अपनी योग्यता से उनमें परिवर्तन तथा गति को तेज़ किया।

प्रारम्भ में ये गिरमिटिया अपनी भाषा के रूप में भोजपुरी बोली को लाए थे; परंतु शिक्षित समुदाय के प्रयत्नों से मॉरीशस की बैठकाओं में हिंदी नका अध्ययन-अध्यापन शुरू हुआ। अनत तथा उनके समकालीन लेखक साहित्यकार इन्हीं बैठकाओं की देन थे। आज मॉरीशस में हिंदी बैठकाओं से अपनी यात्रा तय करती हुई, विश्वविद्यालय स्तर तक पहुँच चुकी है। हिंदी की इस संघर्षपूर्ण यात्रा ने मॉरीशस में भारतीय संस्कृति के रूप को प्रकाशमान किया है।

संस्कृति के तीनों अंगों- भाषा, रहन-सहन तथा खान-पान पर यहाँ हिंदी ने अपनी छाप छोड़ी है। मॉरीशस के हिंदुओं में कुछ पौराणिक हैं तो कुछ आर्य-समाजी। मॉरीशस के हिन्दू आज भी यज्ञ, पूजा-पाठ, हवन-संध्या आदि में आज भी हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। विवाह-संस्कार भी भारतीय संस्कृति के अनुसार ही सम्पन्न किया जाता है। त्योहारों में हिन्दू-नववर्ष, मकर-संक्रांति, सरस्वती पूजा, रामनवमी, होली, दीपावली, महा-शिवरात्रि, गणेश-चतुर्थी , गीता-जयंती, नवरात्र, हनुमान-जयंती, कावेदी, वर्षापीरप्पू, युगादि आदि बड़े ही धूमधाम से तथा श्रद्धा से मनाए जाते हैं। ऑफ़िस में आज भी पाश्चात्य परिधान पहने जाते हैं पर अपने सांस्कृतिक कार्यों के समय भारतीय परिधान ही पहने जाते हैं। साड़ी यहाँ का लोकप्रिय तथा आदरणीय परिधान है। हिंदी अध्यापक तथा हिंदी अध्यापिकाएँ आज भी गुरुजी तथा बहिनजी सम्बोधन से पुकारे जाते हैं। सभी पंडित तथा पंडिताएँ सभी मंत्र संस्कृत में तथा बाकी का सारा कार्य हिंदी में ही सम्पन्न करवाते हैं। यहाँ आने वाले पर्यटक इस देश में भारतीय संस्कृति की खुशबू को महसूस करते हैं।

खान-पान में आज भी रोटी, चावल दाल, पकौड़े, मिठाइयाँ आदि लोग खाना पसंद करते हैं। दीपावली पर आज भी घर-घर मिठाई रसोईघर में पकाना शगुन माना जाता है। भारतीयों के समान यहाँ भी लोग सब्ज़ियाँ चाव से खाते हैं। धार्मिक त्योहारों के समय पूरे परिवार शाकाहारी हो जाते हैं।

मॉरीशस की जीवन-शैली पर पाश्चात्य सभ्यता का भरपूर प्रभाव है, पर इस बदलाव के बावजूद भी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की आज भी परिवार तथा समाज में मान्यता है। तलाक की दर बढ़ रही है, विवाहेतर सम्बन्धों का ग्राफ़ ऊंचा चढ़ रहा है, फिर भी समाज इस प्रकार के सम्बन्धों को हेय दृष्टि से देखता है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्य आज भी यहा की सोच की जड़ों को सींचते हैं।

भारतीय संस्कृति तथा भारतीय वास्तु-शास्त्र के अनुसार यहाँ के भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ है। आज भी हर घर के आँगन में ॐ या महावीर ध्वजा दिखाई देगी। व्रत, पर्व, तीज-त्योहार सभी भारतीय पंचांग के अनुसार मनाए जाते हैं।

आज भी यहाँ माँ को मान से माँ ही बुलाते हैं, उसे ममी नहीं बनाया गया। रिश्ते आज भी शुद्ध रूप में है यथा–दादा-दादी, नाना-नानी, बहिन-बहनोई, मौसी-मौसा, भाई, चाचा-चाची आदि। आंटी-अंकल की सभ्यता को यहाँ का समाज नकारता है।

प्रत्येक हिन्दू अपने बच्चों को हिंदी, तमिल, तेलुगु, मराठी भाषाओं में से किसी एक भाषा का ज्ञान दिलाना अपना धर्म समझता है। कक्षा 9 तक छात्र किसी एक भाषा का अध्ययन करते हैं। मीडिया पर भी चौबीस घंटे हिंदी में कार्यक्रम आते रहते हैं। मनपसंद गीत, हमारा-स्वास्थ्य, बाल-कार्यक्रम, साहित्य-दर्पण, हमारी खेती,

वकील की सलाह, आपके प्रश्न, त्योहारों पर विशेष कार्यक्रम, वैदिक-वाणी, कबीर-वाणी, साक्षात्कार, समाचार, खेल-समाचार, मृत्यु-सूचनाएँ, संस्थाओं के कार्यक्रम आदि अनेक तरह के कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी के सभी कार्यक्रमों के साथ-साथ हिंदी भी पूरे जोश के साथ भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रही हैं। मॉरीशस में विशेष बात यह है कि धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं को संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार से प्रति सदस्य के अनुसार एक सब्सिडी मिलती है। यह उनके लिए एक ताकत का काम करती है।

इस प्रकार मॉरीशस में हिंदी भाषा ने यहाँ के मीडिया, जीवन, विवाहोत्सव तथा अन्त्येष्टि तक के सोलह संस्कार, पूजा-पाठ, घर-बाहर पर भारतीय-संस्कृति की छाप छोड़ी है। इसीलिए जब कोई भारत से मॉरीशस आता है तो वह मॉरीशस को लघु भारत कहने से नहीं हिचकिचाता।

रैव एण्ड्र बीटन ने १८५९ में कहा था– *'ये मोटे नाक-नक्श वाले पूरबी लोग, बेहद थोड़े से कपड़े पहने हुए, मॉरीशस के राजनीतिक शरीर की माँस-पेशियाँ, शिराएँ, धमनियाँ एवं स्नायुमण्डल हैं। वे इस द्वीप में दिखाई देने वाली सारी संपत्ति, विलासिता और भव्यता के गुप्त स्रोत हैं।* *(इन्द्रधनुष, पृ० 82)*

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- मॉरीशस का इतिहास, पं. आत्माराम विश्वनाथ, 1998, आत्माराम एंड संस, दिल्ली
- मॉरीशस का सुबोध इतिहास, प्रह्लाद रामशरण, 2016, स्टार पब्लिकेशन्स, दिल्ली
- इन्द्रधनुष, अगस्त 2016, अगस्त 2011, अगस्त 2010 सं. प्रह्लाद रामशरण
- महात्मा गांधी संग्रहालय, मोका, मॉरीशस
- इन्दिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र, फ़ीनिक्स, मॉरीशस
- पुस्तकालय - महात्मा गांधी संस्थान
- संस्कृति : समस्या और संभावना, गोविंद चातक, 1994 तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली
- संस्कृति और जनजीवन, युधिष्ठिर भार्गव, 1970राजपाल एंड संस, दिल्ली
- संस्कृति का संगम, विजय राघव रेड्डी, 1994, कलिंग पब्लिकेशन, दिल्ली
- साहित्य सौन्दर्य और संस्कृति सं. रतन कुमार पांडेय, 1995, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- भारतीय संस्कृति, प्रीतिप्रभा गोयल, 1991, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, राजस्थान

वरिष्ठ प्राध्यापिका,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

7 हिंदी का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्वरूप

पैड़ाला रवींद्रनाथ

भाषा एक साधन है, जिसके द्वारा हम अपनी भावनाओं को, विचारों को दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। भाषा के बिना मनुष्य गूँगा है और मानव समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते। भाषा जितनी सरल, सहज एवं सुबोध होती है, भाव संप्रेषण में वह उतनी प्रचुरता प्राप्त कर सकती है और लोक प्रिय बन सकती है। "आधुनिक भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा की परिभाषा इस प्रकार है–"भाषा अपने भाषा क्षेत्र में बोली जानेवाली समस्त बोलियों की समष्टि का नाम है।"[1] संसार में लगभग 7000 भाषाएँ हैं लेकिन 3000 भाषाएँ लुप्त होनेवाली हैं। सैद्धांतिक रूप से अधिक संख्या में बोली जानेवाली भाषाओं के स्थान निर्धारण में कोई निश्चित आँकड़ा नहीं बन पाया है। संसार में हिंदी के स्थान निर्धारण में कई धारणाएँ सामने आने लगी हैं। एथनालॉजी विश्व की भाषाओं की सूची है जिसका प्रयोग भाषा विज्ञान में अकसर किया जाता है। इसके 22वाँ संस्करण के अनुसार संसार के ज्यादातर लोगों में बोली जानेवाली भाषाओं में मंदारिन प्रथम स्थान पर है तो हिंदी तीसरे स्थान पर। फरवरी 2022 में निकला 25वाँ संस्करण में हिंदी का यह स्थान चौथे नंबर पर चला गया है।[2]

हिंदी क्षेत्र के मुख्यतः 20 बोलियों का नाम हिंदी भाषा है। हिंदी और चीनी भाषा का तुलनात्मक दृष्टि से प्रो.महावीर सरन जैन ने लिखा है कि "जिस प्रकार चीन में मंदारिन भाषा की स्थिति है उसी प्रकार भारत में हिंदी भाषा की स्थिति है। जिस प्रकार हिंदी भाषा क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं वैसे मंदारिन भाषा क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं।"[3]

संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार हिंदी भारत की राजभाषा है। 14 सितंबर, 1949 को इसे राजभाषा के रूप में घोषित किया गया है। इसकी यादगार में हम हर वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाते हैं। यह बहुत बड़ी विडंबना है कि उसकी राजभाषा का दर्जा नाम मात्र के लिए रह गया है। उसका स्थान अंग्रेजी भाषा ने हड़प लिया है, तो राष्ट्र भाषा की बात कल्पना ही रह गयी है।

पत्रकार, कवि, अनुवादक प्रियदर्शन भारत में हिंदी की विडंबनाओं को लेकर लिखते हैं कि 'पाठशाला एवं कला शालाओं में हिंदी पढ़नेवालों की संख्या कम हो गयी है। विश्वविद्यालयों में वह पहले से भी कम थी अब पूरी तरह विलोप के कगार पर है। यानी हिंदी कोई पढ़ना नहीं चाहता। इसका कारण यह है कि हिंदी में पारिश्रमिक घटा है। लेखन की हालत यह है कि एक भी लेखक लिखकर गुज़ारा करने की कल्पना नहीं कर सकते। भारतीय भाषाओं के बीच शत्रुतापूर्ण व्यवहार है। बँगला, तमिल और मराठी जैसी भाषाओं को लगती है कि हिंदी उनकी जगह घेर ली है। यहाँ के अमीर लोग अपने बच्चों की पढ़ाई नौकरी के लिए वे बड़ी सहजता से अंग्रेजी का चुनाव कर लेते हैं। उनके घरों में हिंदी की किताबें नहीं पढ़ी जातीं।'[4] प्रियदर्शन जी के विचार में सत्य है कि हमारे देश में हिंदी के प्रति सद्भाव नहीं है।

लेखक, कोलकता विश्वविद्यालय के भूत पूर्व

आचार्य एवं हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ.अमरनाथ लिखते हैं कि "आज शिक्षा को व्यापार और मुनाफ़े के लिए ज्यादातर निजी क्षेत्र के हवाले कर दिया गया है। देश के अधिकांश राज्य सरकारों ने सरकारी विद्यालयों को भी अंग्रेजी माध्यम में बदल दिया है और हमारे नौनिहालों से उनकी मातृभाषाएँ क्रूरतापूर्वक छीन ली हैं। केंद्रीय विद्यालयों और नवोदय विद्यालयों में भी ऐसी व्यवस्था कर दी गयी है कि आठवीं-नौवीं के बाद ही बच्चों की हिंदी छूट जाती है।"[5] संघ लोक सेवा आयोग तथा विभिन्न राज्यों के लोक सेवा आयोगों में मुख्य जोर अंग्रेजी पर था। इससे हिंदी तथा मातृ भाषा माध्यम के अभ्यर्थियों के लिए प्रारंभिक परीक्षा पास करना भी कठिन होता गया। ग्रामीण पृष्ठ भूमि के ऐसे अभ्यर्थी ज्यादातर मानविकी के विषय चुनते हैं।...`साक्षात्कार में भी हिंदी माध्यम वालों के साथ भेदभाव किया जाता है।'

यह बात सत्य दूर नहीं है कि अंग्रेजी अमीर भारत की संपर्क भाषा बनती जा रही है तो हिंदी गरीब भारत की भाषा है। यहाँ के पढ़े-लिखे संपन्न लोग खुद तमिल, तेलुगु, मराठी बँगला व अन्य किसी दूसरी भारत की भाषा सीखना नहीं चाहते हैं। वे अंग्रेजी के साथ अन्य किसी दूसरी विदेशी भाषा सीखने में दिलचस्पी लगा रहे हैं। अपने को एक अलग विशिष्ट कोटि का मानने लगे हैं। वर्ण-जाति एवं धार्मिक श्रेष्ठता का दंभ इस विडंबना का मूल कारण है। सामान्य जनता के साथ चलना ये पसंद नहीं करते हैं। आज के समय में हिंदी दलित, आदिवासी व हाशिये की भाषा बनती जा रही है, जहाँ पहली पीढ़ियाँ स्कूल में पाँव रख रही हैं। उपेक्षित समाज के लोग अपने विचार एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करने में इसी भाषा का सहारा ले रहे हैं। हिंदी में स्त्रीवादी साहित्य, दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, किन्नर साहित्य आदि के रूप में उपेक्षित समाज का भोगा हुआ यथार्थ बोलचाल की हिंदी में अभिव्यक्त हो रहा है। निस्संदेह, इन दिनों हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं में भी सबसे ज्यादा जो साहित्य पढ़ा जा रहा है वह दलित साहित्य है। हिंदी आज की तारीख में बाजार, मनोरंजन और सिनेमा की भाषा भी है।

खुशी की बात यह है कि भारत के अहिंदी प्रांतों में हिंदी पहले अध्ययन और अध्यापन की भाषा के रूप में थी पर आज वह अध्ययन की भाषा के साथ -साथ अभिव्यक्ति की भाषा भी है। आज हिंदी में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक जीवनी, एकांकी, यात्रा संस्मरण, निबंध, संस्मरण, आलोचना जैसी सारी विधाओं में मौलिक कृतियाँ मिलती है। तेलुगु, मलयालम कन्नड़, बंगला के जैसे राज्यों में नव लेखकों का उदय हो रहा है, अहिंदी प्रांतों में हिंदी की व्यापकता का यह परिचायक है।

हिंदी आज न केवल भारत की भाषा है बल्कि विश्व की भाषा है। विश्व भाषा से जो अपेक्षाएँ होती हैं उनको पूरा करने की सशक्तता हिंदी भाषा में है। आज हिंदी बोलने-समझने वालों का विस्तृत भौगोलिक स्तर विस्तरित होता जा रहा है। भारत के बाहर नेपाल, भूटान, श्रीलंका, म्यांमार, सिंगापुर, मलेशिया, थाइलैंड, हांकांग, फिज़ी, सूरीनाम, ट्रिनिटाड-टोबागो, इंगलैंड, कनाड़ा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, सौदी अरब, ओमन, कतर, बहरीन आदि देशों में हिंदी भाषी प्रचुर संख्या में हैं। यह सरल, सुबोध एवं लचीली भाषा है और इसमें विभिन्न संदर्भों की अभिव्यक्ति की क्षमता भी है। हिंदी भाषा की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसके भीतर एक अंतरराष्ट्रीय स्वरूप छिपा हुआ है। आर्य, द्रविड़, आदिवासी, दलित, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, चीनी, जापानी सारे संसार की भाषाओं के शब्द इसकी अंतरराष्ट्रीय मैत्री को उजागर करते हैं।

विदेशी विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ने की माँग बढ़ती जा रही है। हिंदी भाषा से विदेशों के साथ मैत्री की भावना बढ़ रही है। विदेशी लोग भारत को अच्छी तरह समझने का मौका मिल रहा है, हमारा साहित्य एवं संस्कृति से अभिभूत होते दिखाई दे रहे हैं।

हिंदी को विश्व भाषा की दर्जा दिलाने में प्रवासी भारतीयों का विशेष योगदान रहा है। भारत से बाहर जाने की परंपरा दो हजार वर्षों की है। लगभग आठ समुदाय अलग-अलग काल में भारत से जाकर विदेशों में बसने लगे थे। आज दुनिया भर में भारतीय मूल के लोग करीब दो करोड़ होते हैं। इनमें ज्यादातर लोग उन्नीसवीं शताब्दी में आर्थिक कारणों से भारत छोड़कर गये थे। आज दुनिया भर के हर कोने में भारत के प्रवासी लोग दिखाई देते हैं। वहाँ के प्रवासी भारतीयों के अनुसार विश्व में हिंदी की माँग दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। इस बात का उल्लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलता है। हिंदी शिक्षिका, लेखिका, और संपादक, शालिनी वर्मा दोहा-कतर से लिखती हैं कि "हिंदी भारतीय प्रवासियों के साथ लंबी यात्रा तय करती हुई समस्त विश्व में फ़ैल चुकी है और हिंदी के भविष्य को लेकर चिंतित साहित्यकारों के लिए एक शुभ संदेश की भांति है। हमारी इस वैश्विक भाषा को शायद अभी बहुत पड़ाव पार करने हैं परंतु मुझे अपने अनुभव यही बताते हैं कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है बस हमें थोड़े सजग होने की आवश्यकता है।"[6] आगे वह लिखती हैं कि कतर में भारतीय शिक्षण प्रणाली बहुत प्रसिद्ध हैं और कतर के लोग भारतीय शिक्षा को बहुत सम्मान देते हैं। वहाँ के 19 भारतीय विद्यालयों में हिंदी कक्षा 8 तक द्वितीय व तृतीय भाषा के रूप में पढ़ना अनिवार्य है। इन पाठशालाओं में अरबी बच्चे और अन्य देशों के बच्चे भी पढ़ना पसंद करते हैं। वहाँ 2021 में भारतीय विश्वविद्यालय की स्थापना भी हुई है जिसमें हिंदी भी स्नातक में एक विषय के रूप में शामिल की जानेवाली है।

नीदरलैंड्स में हिंदी भाषा के विकास के संदर्भ में प्रो. मोहन कांत गौतम लिखते हैं कि सूरीनाम की स्वतंत्रता के बाद नीदरलैंड्स में एक-डेढ़ लाख भारतवासी (हिंदुस्तानी) आजकल हैं। उनकी स्वयं चालित संस्थाएँ हैं जिनमें महात्मा गाँधी जी की "हिंदी राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा के पाठ्यक्रमों को पढ़ाया जाता है। अभी तक कोई 24000 विद्यार्थियों को सनदें मिल चुकी हैं।.. यहाँ विश्वविद्यालयों में बहुत से विद्यार्थियों ने भारतीय साहित्यकारों पर शोध किया है।"[7]

थाईलैंड में हिंदी की स्थिति के बारे में प्रो.करूणा शर्मा लिखती हैं कि "थाईलैंड में भी हिंदी का प्रादुर्भाव निरंतर बढ़ रहा है। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि थाईलैंड और भारत का सांस्कृतिक संबंध बहुत प्राचीन काल से रहा है। भारत में प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म को थाईलैंड के लोगों द्वारा इतने व्यापक रूप से अपनाया गया कि आज यह देश बौद्ध धर्म अनुयायियों का सबसे बड़ा देश बन गया है। परिणाम स्वरूप यहाँ की भाषा और संस्कृति पर भी भारतीय प्रभाव देखा जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि थाई भाषा में पाली और संस्कृत के बहुत सारे शब्द मिलते हैं, जो थाइयों के उच्चारण वैशिष्ट्य के कारण अलग से लगते हैं।"[8] सरकार की ओर से यहाँ हिंदी शिक्षण व्यवस्था तो नहीं है तथापि बच्चे हिंदी पढ़ने के लिए भारत में आते रहते हैं।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा की पूर्व प्रो. वशिनी शर्मा हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप पर लिखती हैं कि "वैश्विक संदर्भ में हिंदी अब साहित्यिक अध्ययन की सीमाओं से बाहर आकर विभिन्न प्रौद्योगिकीय और व्यवसायिक क्षेत्रों में अपना स्थान बना चुकी है। इन दिनों देश में ही नहीं विदेशों में भी व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में

हिंदी (अन्य भाषाएँ) की व्यवहारिक कार्यपरक कुशलता पर बल दिया जा रहा है।"[9]

हिंदी हमारे देश की शान है। स्वतंत्र संग्राम में पूरे भारत को जोड़ने में यह साधन बनी। भारत की एकता को बनाये रखने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसको बनाये रखने के बजाय हिंदी के प्रति तिरस्कार की भावना, भारत की गरिमा को भंग करनेवाली है।हिंदी की विडंबनाओं पर ध्यान देना और हिंदी को सर्वमान्य भाषा बनाने की दिशा में कदम लेना आवश्यक है। हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ बदलाव लाना आवश्यक है कि त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत अहिंदी प्रांतों में अपनी मातृ भाषा तथा हिंदी को, मातृ भाषी हिंदी प्रांतों में भारत की एक अन्य भाषा सीखना अनिवार्य बना देना आवश्यक है। इससे भारत के लोगों में भाषाओं के प्रति सद्भाव बनाये रख सकते हैं और हिंदी की उन्नति भी होती है। यह जगत परिवर्तनशील है। यहाँ कोई भी धारणा व विचार सार्वकालिक नहीं हो सकता। हम आशा कर सकते हैं कि अब तक जिन राज्यों व प्रांतों में हिंदी के प्रति तिरस्कार की भावना थी, वह बदल जाएगी। हिंदी की विजय यात्रा फिर वहीं से शुरू होगी।

वर्तमान में दुनिया में प्रथम अथवा द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी बोलने वालों की संख्या रूसी, जर्मनी, स्पेनी, रोमानियन, इटली, पुर्तगाली, अरबी आदि भाषाओं से भी अधिक हैं। यह न्याय संगत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को उसकी एक अतिरिक्त भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। हिंदी को उसकी अतिरिक्त भाषा बनाने की दिशा में सार्थक एवं प्रतिबद्ध होकर पहल कर सकें।

सन्दर्भ सूची :

1. महावीर सरन जैन, हिंदी भाषा को केवल खड़ी बोली मानना भ्रामक है, वीणा मासिक पत्रिका, मार्च -2022, पृष्ठ – 9.
2. https://en.m.wikipedia.org.
3. महावीर सरन जैन, हिंदी भाषा को केवल खड़ी बोली मानना भ्रामक है, वीणा मासिक पत्रिका, मार्च -2022, पृष्ठ – 17.
4. प्रियदर्शन, हिंदी की विडंबनाओं का हिमालय, विश्वा मासिक पत्रिका, जनवरी, 2022, पृष्ठ - 18.
5. अमरनाथ, सरकारी सेवाओं में हिंदी, मुक्तांचल पत्रिका, अक्तूबर-दिसंबर अंक-2021, पृष्ठ - 33.
6. शालिनी वर्मा, भारतीय समुदाय और वर्तमान में हिंदी की स्थिति, विश्वा मासिक पत्रिका, जनवरी, 2022, पृष्ठ –12.
7. मोहनकांत गौतम, नीदरलैंड्स में भारतीय संस्कृति के द्वारा संस्कृत, हिंदी और अन्य भाषाओं का विकास, विश्वरंग पत्रिका, जनवरी – जून, 2022 पृष्ठ - 33.
8. करूणा शर्मा, थाईलैंड में हिंदी का प्रचार-प्रसार, सौरभ पत्रिका, जुलाई-सितंबर, अंक-03, पृष्ठ – 21.
9. वशिनी शर्मा, हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप, नॉटनल डॉट कॉम, पृष्ठ – 3.

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति,
आँध्र प्रदेश

8 ताजिकिस्तान में हिंदी का गठन और विकास

डॉ. मैरम्बी नुरोवा[1]
अलिख़ान लतिफोव[2]

आलेख का सार

यह लेख हिंदी भाषा शिक्षण केंद्रों के गठन और विकास के बारे में बात करता है। हिंदी सीखने का पहला और सबसे प्रभावशाली केंद्र ताजिकिस्तान के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के एशियाई और यूरोपीय भाषा संकाय (पूर्व प्राच्य अध्ययन संकाय) का भारतीय भाषाशास्त्र विभाग है। अपने क्षेत्र के पहले विशेषज्ञ और गणतंत्र के भारतीय भाषाविद् इस विभाग के स्नातक हैं।

आज हिंदी विभाग के स्नातक सोतिम उलुगज़ोदा भाषा विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के शिक्षक के रूप में काम करते हैं।

इन केंद्रों के अलावा हमारे देश के कोने-कोने में हिंदी भाषा की कक्षाएं संचालित हो रही हैं। ऐसे केंद्रों में, पौराणिक भारत और भारतीय भाषा के प्रेमी नियमित रूप से भारतीय मेहमानों की भागीदारी के साथ विभिन्न सभा और बैठकों का आयोजन करते हैं।

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्मृति इतनी मजबूत है कि यह किताबों और वृत्तचित्रों से आगे निकल जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्मृति लोगों की आत्मा में अंकित होती है और भावनाओं के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होती है।

ताजिक और भारतीय लोगों के बीच सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंधों का एक लंबा इतिहास रहा है और इन लोगों की भाषा और साहित्य के साथ-साथ संस्कृति और सभ्यता दोनों बहुत कुछ समान है। शांति और राष्ट्रीय एकता के संस्थापक के रूप में - राष्ट्र के नेता, ताजिकिस्तान गणराज्य के राष्ट्रपति इमोमाली रहमोन ने जोर दिया: "दुनिया जानती है कि दोनों देशों (ताजिकिस्तान और भारत) के बीच संबंध प्राचीन काल के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों पर आधारित हैं। स्थायी नैतिकता और मानवतावादी दर्शन और हमारे पूर्वजों के सच्चे, व्यापक दृष्टिकोण के अंतहीन समुद्र में निहित लोग और विश्व-प्रसिद्ध मूल्य।"

विशेष रूप से, रूसी इतिहासकार म.स. अंद्रेएव लिखते हैं कि "... पौराणिक पिता-स्वर्ग (पादर-ओस्मोन) और धरती-माता (मोदर-ज़मीन) "ऋग्वेद" के "दो महान माता-पिता" अभी भी ताजिक लोगों की कल्पना में होते हैं और अभी भी कविताओं में उपयोग किए जाते हैं जो बहुत अर्थ पैदा करते हैं। और आज ताजिकिस्तान के यज़्गुलाम के इलाके में आकाश को दादा-पिता और पृथ्वी को नैन-माता आदि कहा जाता है। "ऋग्वेद" में पृथ्वी और आकाश दोनों को माता और पिता के रूप में भी वर्णित किया जाता है, "एक अविभाज्य युगल", जो यूरोप की जातियों के बीच भी पाया जा सकता है [3]।

देश की स्वतंत्रता की अवधि के दौरान भारत के साथ ताजिक लोगों के बहुपक्षीय मैत्रीपूर्ण संबंधों ने एक नई दिशा ली और मजबूत हुई। भारत गणराज्य ताजिकों की राज्य की स्वतंत्रता को मान्यता देने वाले पहले लोगों में से एक था और उसने राजधानी में एक दूतावास खोला। पर्यटन और व्यापार, शिक्षा, संस्कृति, सुरक्षा और

रक्षा में दोनों देशों के बीच सहयोग ने एक नया रूप ले लिया है, और आज कई भारतीय छात्र ताजिक विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, और ताजिक छात्र भी विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन करने के लिए भारत की यात्रा करते हैं।

भारतीय लोगों की भाषा और परंपराओं से परिचित होने के लिए, भारतीय भाषाशास्त्र विभाग तीस से अधिक वर्षों से ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में काम कर रहा है, और हर साल दर्जनों छात्र स्नातक होते हैं और दोनों देशों के बीच सहयोग के विकास में योगदान करते हैं। जैसा कि राष्ट्र के नेता ने कहा: "तजाकिस्तान गणराज्य भारत गणराज्य के साथ पारस्परिक रूप से लाभकारी सहयोग के विकास और आगे विस्तार में रुचि रखता है और अंतरराज्यीय गतिविधि के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए हर संभव प्रयास करेगा। हम दोनों देशों के बीच बहु-शाब्दिक सहयोग की विशाल क्षमता का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं। "

ताजिकिस्तान और भारत के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना में उनके योगदान के लिए बोबोजान गफूरोव, मुहम्मद ओसिमी और मिर्ज़ो तुर्सुनज़ोडा ने जवाहरलाल नेहरू अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया।

ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग :

दुशांबे में ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी-उर्दू विभाग की स्थापना 1983 में हुई थी। यह विभाग भारत की भाषा और साहित्य में स्थानीय प्राच्यविदों के प्रशिक्षण के केंद्रों में से एक है। इसी विभाग में हिंदुस्तान की दो भाषाएँ सीखाते हैं। सेंट-पीटर्सबर्ग प्राच्य संप्रदाय के स्नातकोत्तर प्रोफेसर हबीबुल्लाह राजाबोव, प्रोफेसर मुमताज उस्मानोव और प्रोफेसर इब्राहिम नूरोव ने ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी-उर्दू विभाग के संस्थापक हैं। इसके अलावा, मास्को से हिंदी साहित्य के लिये प्रोफेसर नेली बाबाजानोवा और ताशकंद से उर्दू भाषा के लिये वेलेंटीना सबिरनीयाज़ावा निमंत्रित की गयी थीं। बहुत कम समय में, उनके प्रयासों से, हिंदी और उर्दू विभाग को बहुत स्थानीय विशेषज्ञ ख़त्म करके उनमें से कुछ इस विभाग में काम कर रहे हैं। जिक्र करना ज़रूरी है कि, विभाग के शिक्षकों की ओर से ताजिक भाषा में कई हिंदी पाठ्यपुस्तकें, विनिबंध, शब्दकोश और आदि तैयार किए गये हैं। अपनी योग्यता को सुधारने के लिये भारत और पाकिस्तान में प्रशिक्षण करके सम्मेलनों में भी भाग लेते हैं। साथ ही, हर साल, अच्छे से अच्छे छात्र 10 महीनों के लिये आगरा केंद्रिय हिंदी संस्थान भेजे जाते हैं।

हिंदी-उर्दू विभाग नया होते हुए भी इसके स्नातक ताजिकिस्तान गणराज्य के हर विभिन्न क्षेत्रों में काम करके देश की प्रगति में अपना योगदान दे रहे हैं।

वर्तमान स्थिति, प्रशासन के नए तरीकों और राज्यनीति, ताजिकिस्तान के राष्ट्रपति के भारत और पाकिस्तान में दौरा करने से अनुमान कर सकते हैं कि आजकल हिंदी और उर्दू की बहुत ज़रूरत पड़ती है। ताजिकिस्तान गणराज्य के राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहे, साथ-साथ शिक्षक उच्च योग्य विशेषज्ञों को तैयार करने के लिए ज़्यादा कोशिश करने लगते हैं तो वे भविष्य में हमारे देश को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व कर सकें।

इस विभाग में 2009 में "पाकिस्तान स्टडी

सेंटर" और 2017 में "इंडिया स्टडी सेंटर" की स्थापना की गई थी। विभाग के शिक्षक और छात्र इन केंद्रों का अच्छी तरह उपयोग कर रहे हैं।

यहां हिंदी और उर्दू की नयी प्रकाशित पुस्तकें और पत्रिकाएं बहुत मिलती हैं जिन्हें हमारे अध्यापक और छात्र अपने शोधकार्य और पढ़ाई में लगातर प्रयोग करते हैं। भारतीय उर्दू-हिंदी शिक्षक चार साल से विभाग में पढ़े रहे हैं। ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और भारत राजदूतावास के दोपक्षीय समझौता के आधार पर जनवरी, 2019 से जून, 2021 तक अलीगढ़ विश्वविद्यालय सहायक प्रोफेसर डॉ. रफीउद्दीन ने छात्रों को हिंदी और उर्दू पढ़ायी। उसके बाद सितंबर, 2021 से अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के डॉ. मुश्ताक सदफ़ अध्यापन की जिम्मेदारी बखूबी निभा रहे हैं. डॉ. मुश्ताक सदफ़ की कक्षाएं हिंदी और उर्दू के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

सेंट पीटर्सबर्ग में ओरिएंटल स्टडीज के विभाग के स्नातक डॉ. राजबोव ह., उस्मानोव म. और नुरोव इ. को हमेशा के लिए ताजिक इंडोलॉजी के संस्थापकों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। यहीं उस्ताद हिंदी विभाग के प्रथम भी हैं।

डॉ. रजाबोव ह. ने भारतीय कहानी के सौ साल के इतिहास पर एक मूल्यवान वैज्ञानिक-अनुसंधान कार्य प्रकाशित किया (2000) और एक मूल्यवान कृति दर्जनों भारतीय लेखकों की कला और साहित्यिक विरासत को समर्पित है।

ताजिक राष्ट्राय विश्वविद्यालय के इंडोलॉजी विभाग की डॉ. नुरोवा म. भारतीय लेखकों के जीवन और रचनात्मकता के अनुवाद, शोध और अध्ययन में लगे रहते हैं। ताजिक लेखकों राहिम जलील, जलोल इकरामी फ़ज़लिद्दीन मुहम्मदिव, उरुन कुखज़ोदा और अब्रोर ज़ोहिर और हिंदी गद्य लेखक मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी और कमलेश्वर के उपन्यासों के उदाहरण पर आधुनिक ताजिक उपन्यास और हिंदी उपन्यास का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है, इतिहास के वर्तमान चरण में ताजिक और भारत के लोगों के बीच साहित्यिक संबंधों के इतिहास का संक्षिप्त विश्लेषण देता है।

आधुनिक भारतीय साहित्य के लेखक, भारत में प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका के संपादक मेहरुन्निसा परवेज़ की जीवनी और कहानी कहने की कला के बारे में ताजिकिस्तान के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के एशियाई और यूरोपीय भाषाओं के संकाय के हिंदी भाषाशास्त्र विभाग के शिक्षक अलीखान लतीफोव ने शोध किया। सन् 2007-2009 में, आली कान लतीफ़ोव ने लखनऊ, भारत गणराज्य में हिंदी भाषा केंद्र में एक प्रशिक्षु के रूप में काम किया और सीधे साहित्य के साथ काम किया। इस साल विभाग के एक युवा शिक्षक लतीफोव अली खान ने अपना निबंध "मेहरून्निसा परवेज की कहानियों में सामाजिक समस्याओं का प्रतिबिंब" जमा कर लिया। राजेंद्र यादव द्वारा कहानी कहने की कला के बारे में - रहमतुल्लोएवा ज़., प्रेमचंद की कहानियों का अनुवाद पर-योरोवा स. व्यस्त हैं।

मुस्लिमकुलोवा मनीजा, भारतीय भाषाशास्त्र विभाग के पहले स्नातक, आज कल भारत गणराज्य के दिल्ली नगर में ताजिकिस्तान गणराज्य के दूतावास के सक्रिय कर्मचारियों में से एक है।

इसलिए, यदि हम डीएमटी के इंडोलॉजिस्ट द्वारा लिखे गए कार्यों की ऐतिहासिक तिथियों को देखें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इंडोलॉजी का विज्ञान, अपनी कम उम्र के बावजूद, कई महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने में सक्षम था।

सन् 2012 में विभाग के शिक्षकों डॉ. म.

नूरोवा और म. सोलिवा इमोमाली रहमोन की कृति को ताजिक इतिहास के दर्पण में, आर्यों से सामानियों तक, दूसरी किताब, ताजिकी से हिन्दी में अनुवाद किया और दिल्ली में प्रकाशित किया गया था, जो एक निश्चित ऐतिहासिक काल में ताजिक लोगों के इतिहास को जानने और उसका अध्ययन करने के लिए हिंदी लोगों के लिए एक अमूल्य मार्गदर्शक है। यह कहना उचित होगा कि ताजिकिस्तान और भारत गणतंत्र के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की 20 वीं वर्षगांठ के लिए समर्पित भारत गणराज्य के बुद्धिजीवियों और सरकार, भारत की विज्ञान और संस्कृति के प्रतिनिधियों को यह पुस्तक पहली बार दिल्ली शहर में प्रस्तुत की गई थी।

ताजिकिस्तान गणराज्य की राजधानी में, दुशांबे शहर, एशियाई और यूरोपीय अध्ययन संस्थान (पूर्व ओरिएंटल स्टडीज और एआई आरटी की लिखित विरासत) का भारत भाषाशास्त्र विभाग अपनी गतिविधियों को जारी रखता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कई वर्षों तक इसके नेतृत्व का दायित्व एक प्रतिष्ठित ताजिक वैज्ञानिक के अमरियाज़डन अलीमार्डोनोव (उनकी आत्मा को शांति मिले) पर था। डॉ. शराफबानु पुलोदोवा को मशरिकज़मीन के प्रसिद्ध कवि मुहम्मद इकबाल लोहुरी की कविताओं के शोधकर्ताओं में से एक माना जाता है। यदि विश्वविद्यालय के इंडोलॉजिस्ट ने भारतीय कार्यों का अनुवाद और शोध करते जाते हैं तो ताजिकिस्तान गणराज्य के विज्ञान अकादमी के पाण्डुलिपि और प्राच्य अध्ययन संस्थान के इस विभाग के वैज्ञानिक (अब ताजिकिस्तान के राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के एशियाई और यूरोपीय अध्ययन संस्थान) भारत और पाकिस्तान के फ़ारसी भाषियों की विरासत के अध्ययन की ओर रुख किया है। उल्लेखनीय है कि भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक, लेखक, अनुवादक, यात्री "राहुल सांकृत्यायन" के नाम पर साहित्य और सांस्कृतिक केंद्र इसी संस्थान के आधार पर संचालित होता है। यह इस तथ्य पर जोर है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्ययन ने ताजिकिस्तान में अपनी गतिविधियों के दायरे का और भी विस्तार करता जाता है।

भारतीय फारसी साहित्य के अध्ययन के रूप में, जो भारत में फारसी भाषी शासन की अवधि के दौरान भारत के सबसे समृद्ध और सबसे अधिक उत्पादक साहित्य में से एक था, हमें उस समय भारतीय लोगों की भाषा, साहित्य, इतिहास, संस्कृति और संस्कृति की स्थिति से अवगत कराने की अनुमति देता है। मसुदी सादी सैल्मान (1046-1121), बुलफराज रूनी (1039-1108), अमीर खोसरोव देहलवी (1253-1325), हुसन देहलवी (1253-1337), फैजी डकनी (1547-1590), अब्दुल कादिर बेदिल (1644-1721), मिर्ज़ा ग़ालिब (1797-1869), अल्लामा मुहम्मद इकबाल (1877-1938) ऐसे कवि हैं, जो भारत में रहकर भारत और भारतीयों के विषय को अपनी कृतियों में स्थान देने में सक्षम हुए, अपने कार्यों की सामग्री को समृद्ध किया। दूसरी ओर, भारतीय फारसी साहित्य का अध्ययन निस्संदेह ताजिक-फारसी साहित्य का एक अविभाज्य अंग है। क्योंकि भले ही यह भारतीय साहित्य है, लेकिन इसमें ताजिक भावना और आवाज जरूर है।[5] जैसा कि हमने बताया, ताजिक लोग भारतीय भाषा सहित भारत की संस्कृति और भाषाओं को सीखने में बहुत रुचि रखते हैं और इस मांग को पूरा करने के लिए, ताजिकिस्तान की सरकार ने दुशांबे में भारतीय गणराज्य के दूतावास के सहयोग से हमारे गणतंत्र के निकट और दूर के क्षेत्रों में भारतीय भाषा के अध्ययन के लिए केंद्र

और कक्षाएं खोली हैं। यह कहा जाना चाहिए कि न केवल ताजिक हिंदी सीखने के लिए इन भारतीय भाषा केंद्रों की ओर रुख करते हैं, बल्कि भारतीय लोग जो वर्तमान में ताजिकिस्तान में पढ़ रहे हैं और रह रहे हैं, लगातार इन केंद्रों में आते-जाते हैं। इस तरह दोनों पड़ोसी राज्यों की मित्रता, सहयोग और सांस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ होते जा रहे हैं। हिन्दी भाषा के ऐसे केन्द्र-कक्षाएँ खतलों क्षेत्र, पंजेकान्त क्षेत्र, बदख्शां स्वायत्त प्रदेश, गार्म आदि में कार्य करते रहते हैं। दुशांबे में भारतीय दूतावास द्वारा इन केंद्रों को लगातार भारतीय पुस्तकों और पत्रिकाओं की आपूर्ति की जाती है।

भारत लिखित, वैज्ञानिक और कलात्मक कार्यों का एक बड़ा खजाना है, और यह प्रसिद्ध ताजिक वैज्ञानिक शिक्षाविद बोबोजान गफूरोव का ध्यान आकर्षित करने में विफल नहीं हो सका। भारत की महान प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी के साथ बैठक और बातचीत ने दोनों मित्र देशों के बीच वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संबंधों के विकास को मजबूत किया है। ताजिकिस्तान और भारत के बीच साहित्यिक संबंधों का एक लंबा इतिहास रहा है, और इन संबंधों को और मजबूत करने के लिए और भारत के महान लोगों के साथ दोस्ती की स्वीकारोक्ति के लिए ताजिकिस्तान गणराज्य के विज्ञान अकादमी (अब ताजिकिस्तान गणराज्य का राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी) के पुस्तकालय का नाम शाश्वत महिला और सेनानी, स्वतंत्र भारत की पूर्व प्रधान मंत्री, इंदिरा गांधी के नाम पर रखा गया था।

ताजिकिस्तान के भाषा विश्वविद्यालय के स. उलुग़ज़ोदा के नाम पर ताजिक युवाओं की रुचियों और जरूरतों के आधार पर सन् 2017 को हिंदी भाषा विभाग का उद्घाटन किया गया जो कई वर्षों से हिंदी भाषा विशेषज्ञों के प्रशिक्षण के लिए देश के सबसे प्रतिष्ठित केंद्रों में से एक माना जाता है। पेशेवर नेता डॉ. साइदजोदा वैसिद्दिन के नेतृत्व पर इस विभाग के छात्र-छात्राएँ ज्यादातर ताजिकिस्तान और भारत के बीच वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संबंधों के इतिहास और गठन में, भारतीय लेखकों की कृतियों का ताजिक भाषा में अनुवाद करने में लगे हुए हैं।

सन् 2019 में इस विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के आधार पर यहां एक भाषा शिक्षण केंद्र-हिंदी कक्षा खोली गई। इस भारतीय केंद्र में दुशांबे में भारत गणराज्य के राजदूत और भारत के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधियों के साथ यादगार बैठकें आयोजित की जाती हैं। इसी केंद्र की जिम्मेदारी डॉ. अहतमशोह युनूसी पर है।

हिंदी भाषा सीखने के लिए सबसे प्रभावशाली और उत्पादक केंद्रों में से एक ताजिकिस्तान गणराज्य की राजधानी दुशांबे में भारतीय गणराज्य के दूतावास के सांस्कृतिक केंद्र में संचालित होता है। हर साल, इस केंद्र के स्नातकों को हिंदी भाषा में प्रवीणता के प्रमाण पत्र से सम्मानित किया जाता है। भाषा प्रशिक्षण के अंत में स्नातक हिन्दी में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। प्रमाण पत्र को स्वयं भारतीय राजदूत द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा। इस वर्ष ताजिकिस्तान में भारत के राजदूत श्री विराज सिंह ने प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए।

इस समय और बाद में, प्रेमचंद, कृष्ण चंदर, खाजा अहमद अब्बास, मुल्क राज आनंद, अमृता प्रीतम, यशपाल, मोहन राकेश, राजेन्द्र याजव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मेहरुनिनस्सा परवेज़, नासिरा शर्मा और अन्य भारतीय लेखकों की कृतियों का ताजिक भाषा में अनुवाद और प्रकाशन किया गया है, जिस से उनके कई पाठक

मिले।

सांस्कृतिक भारतीय लोग भी लंबे समय से ताजिक लेखकों और कवियों के कृतियों से परिचित हैं, अर्थात् सदरूद्दीन ऐनी के उपन्यासों से [1, 2] जो राहुल संकृत्यायन उन का अनुवादक हैं।

ताजिक इंडोलॉजी के गठन और प्रगति में उल्लिखित वैज्ञानिकों का योगदान और इन लोगों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का निर्माण, जो हमारे मित्र और भाई हैं, हमेशा के लिए रहेंगे।

संदर्भ सूची:

1. ऐनी स.अदीना, दिल्ली, प्रतिक प्रकाशन, 1980 पृ.184
2. ऐनी स. दाखुन्दा, इलाहाबाद, साहित्य निबंधवानी, 1984, पृ. 440
3. Andreev M.S. Iz materialov po mifologii tajikov // Po Tajikistanu. Kratkiy ocherk o rabote etnograficheskoy ekspeditsii v Tajikistane v 1925 godu, v. 1. – Tashkent, 1927, 26 p.
4. Ghafurov B. Tajiki. Tariki gadim, kuhan va asrimiyona. J. 1 va 2. –M.: Nauka, 1972, 664 p.
5. Nurova M. Sravnitelnoe izuchenie sovremennoy Tajikskay prozi I prozi Hindi (na primere pomanov sovremennoy Tajikskoy literaruri I literature Hindi). – Dushanbe, 2017, 245 p.

[1]स्वतंत्र लेखन,
ताजिकिस्तान
[2]पीएच.डी.
ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ताजिकिस्तान

9 ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी के प्रचारक : डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

मृदुला कक्कड़

मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव का एक विशिष्ट स्थान है और जब हिन्दी की बात चलती है तो उनका नाम सर्वोपरि आता है। ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी को सम्मानीय स्थान दिलवाने और बच्चों व युवाओं को हिन्दी भाषा सीखने-सिखाने का अवसर प्रदान करने का सबसे बड़ा श्रेय उन्हीं को जाता है। ऑस्ट्रेलिया में रहने वाले प्रवासी भारतीयों को हिन्दी साहित्य उपलब्ध हो सके तथा सरकारी शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी भाषा को मान्यता दिलवाने में आ रही कठिनाइयों को पहचान कर एक के बाद एक उनका हल करने की दिशा में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव अपने सहयोगियों के साथ निरंतर कार्य करते रहे।

डॉ. श्रीवास्तव ने विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी परन्तु विज्ञान की पढ़ाई के साथ-साथ, उन्हें हिन्दी भाषा में भी बहुत गहरी रुचि थी। हिन्दी भाषा के प्रति लगाव होने के कारण अपनी किशोरावस्था से ही डॉ. श्रीवास्तव ने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लेख लिखना आरम्भ कर दिया था।[1] अनेक स्थानीय पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाशित हुआ करते थे, सराहे जाते थे और पुरस्कृत भी होते थे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक **'राकेट उपग्रह और अन्तरिक्ष यात्रा'**[2] सन् 1967 में प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक मानव के चाँद पर जाने से दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी और पाठकों में बहुत चर्चित रही थी। ऑल इण्डिया रेडियो पर भी उनकी वार्ताएँ प्रसारित हुआ करती थीं। इन प्रकाशनों के आधार पर हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखने के लिए उन्हें 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) में वरिष्ठ अनुसंधान फ़ेलोशिप (सीनियर रिसर्च फ़ेलोशिप) प्रदान की गई थी। सामान्यतः इस फ़ेलोशिप के लिए स्नातकोत्तर उपाधि का होना आवश्यक था। सिर्फ़ स्नातक की उपाधि पर इस फ़ेलोशिप का मिलना डॉ. श्रीवास्तव के लिए बहुत सम्मानजनक बात थी।[3] भारतीय भूसर्वेक्षण विभाग में भी हिन्दी अनुवादक के पद पर कार्य करने का उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ था।

हिन्दी के प्रति अपने इसी प्रेम के साथ 1971 में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने ऑस्ट्रेलिया में प्रवास किया था। यहाँ अपनी प्रिय हिन्दी भाषा की पुस्तकों और साहित्य का अभाव जब उन्हें नज़र आया तो अपनी सभ्यता, संस्कृति और पहचान खोने का भयावह दृश्य उन्हें दिखाई देने लगा।[4] यद्यपि उस समय ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी विश्वविद्यालयीन स्तर पर तो (कैनबरा विश्वविद्यालय, मेल्बर्न विश्वविद्यालय में) कहीं-कहीं पढ़ाई जाती थी परन्तु हिन्दी भाषियों की कोई ऐसी संगठित संस्था या व्यवस्था नहीं थी जहाँ बच्चों को हिन्दी पढ़ने का अवसर मिलता। हिन्दी पुस्तकें ढूँढने से भी नहीं मिलती थीं। वह अपने बच्चों को हिन्दी सिखाना चाहते थे परन्तु बच्चों को हिन्दी सिखाने की यहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन कहीं पर भी हिन्दी का प्रयोग नहीं होता था।[5]

ऑस्ट्रेलिया आने के कुछ समय बाद डॉ. श्रीवास्तव के प्रयत्नों से मेल्बर्न के एक उपनगर 'सेंट अल्बान्स' पुस्तकालय में हिन्दी भाषा की पत्र-पत्रिकाओं के संग्रह करने का निर्णय हुआ और उन्हें मँगाने की शुरूआत की गई। अपने प्रयत्नों की

दिशा में प्रगति देख डॉ. श्रीवास्तव को आशा की किरणें दिखाई दीं। परन्तु कुछ समय बाद ही उन पुस्तकों का उपयोग करने वालों की पर्याप्त संख्या न होने और स्थानाभाव के कारण वे पुस्तकें बाहर निकाल दी गईं।

1971 में, लगभग डॉ. श्रीवास्तव के प्रवास के समय, श्रीमती सुधा जोशी मेल्बर्न विश्वविद्यालय में 'इन्डियन स्टडीज़ विभाग' के अंतर्गत हिन्दी अध्यापन का कार्यभार संभाल रही थीं जहाँ अधिकांश विद्यार्थी हिन्दी भाषी या भारतीय मूल के नहीं थे। 'काउंसिल ऑफ़ एडल्ट एजुकेशन' में भी वयस्कों के लिए हिन्दी पढ़ने की सुविधा उपलब्ध थी जहाँ सुधा जी ने कुछ समय तक अध्यापन का कार्य किया था।

डॉ. दिनेश श्रीवास्तव से सुधा जी की मुलाक़ात लगभग १०-१२ वर्षों बाद हुई जब वह अमेरिका से अपनी डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद वापस आए। उसके बाद सुधा जी भी डॉ. श्रीवास्तव के साथ हिन्दी की प्रचार-प्रसार टीम में शामिल हो गईं और उनके साथ कई वर्षों तक हिन्दी के प्रचार व प्रसार से सम्बंधित विभिन्न गतिविधियों में भाग लेती रहीं और सक्रीय रूप से सहयोग करती रहीं।

1979 में मेल्बर्न में अपने अध्यापन के दौरान डॉ. श्रीवास्तव राज्य सरकार से अवकाश की अनुमति लेकर पीएच.डी. करने के लिए अमेरिका जाना चाहते थे परन्तु अवकाश प्राप्ति में सफलता न मिलने पर 1981 में डॉ. श्रीवास्तव ने अध्यापन कार्य से त्यागपत्र देकर सपरिवार अमेरिका के लिये प्रस्थान कर दिया।

सन् 1983 में, अमेरिका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय से उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। उनकी शोध उपाधि का शीर्षक था -'द सेविंग्स ट्रान्सफ़र एफ़ेक्ट आफ़ टीचिंग मैथेमेटिकल मॉडेलिंग आन लर्निंग-ए फ़िज़िक्स यूनिट यूज़िंग मास्टरी लर्निंग एप्रोच'।

अमेरिका से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात, डॉ. श्रीवास्तव सपरिवार मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया लौट आये और विक्टोरिया सरकार के शिक्षा विभाग में पुनः अध्यापन कार्य आरम्भ कर दिया। अमेरिका से आने के बाद वह अपने स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों से भी ग्रसित रहने लगे थे।[6]

डॉ. श्रीवास्तव ने अपने बच्चों को भारत सरकार के 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' पत्राचार कार्यक्रम द्वारा हिन्दी की शिक्षा दिलवाई थी। यह कार्यक्रम भारत के अहिन्दी भाषी सरकारी अधिकारियों के लिए तैयार किया गया था जो बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं था। डॉ. दिनेश श्रीवास्तव विभिन्न उपाय करते रहे और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे ताकि यहाँ पैदा हुए बच्चों के लिए हिन्दी सीखने की व्यवस्था हो सके। उन्होंने अपने लिए तो इस समस्या का समाधान किसी तरह निकाल लिया और बच्चों को पत्राचार के माध्यम से हिन्दी सिखा भी दी, परन्तु अन्य हिन्दी-भाषी या अहिन्दी भाषी बच्चे भी हिन्दी सीख सकें इसकी सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए उन्हें आगे कई वर्षों तक परिश्रम करना पड़ा।

इस समस्या को हल करने के लिये डॉ. श्रीवास्तव ने विक्टोरिया सरकार से माँग की कि बच्चों को हिन्दी सिखाने का प्रबंध किया जाए। डॉ. श्रीवास्तव और अन्य हिन्दी-प्रेमियों के कई वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात 1986 में विक्टोरिया में पहली हिन्दी कक्षा ब्रन्सविक में खोली गई। इस कक्षा को पढ़ाने के लिए सबसे पहले अध्यापक स्वर्गीय डॉ. रमा शंकर पाण्डेय नियुक्त किए गए थे, कभी-कभी उनके स्थान पर उनकी पत्नी श्रीमती इंदुमती पाण्डेय, जो स्वयं भी एक प्रशिक्षित शिक्षिका थीं, हिन्दी की कक्षा लिया करती थीं। कक्षा खुलने के साथ प्रतिवर्ष चिंता का विषय यह रहता था कि कहीं विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण कक्षा बंद न हो जाए और एक दो बार ऐसा हुआ भी जब प्रधानाध्यापक ने विद्यार्थियों की संख्या कम हो जाने के कारण हिन्दी कक्षा बंद करने का आदेश दिया था। परन्तु हिन्दी-प्रेमियों के कठिन परिश्रम और लगन, जिसमें माता-पिता से अनुरोध, सार्वजनिक स्थानों

पर हिन्दी का प्रचार करना आदि सम्मिलित थे, से विद्यार्थियों की वांछित संख्या एकत्रित करने में सफलता मिलती रही। धीरे-धीरे हिन्दी पढ़ाने के केंद्र बढ़ते गए और अब लगभग 11 केन्द्रों में हिन्दी पढ़ाई जाने लगी है।

अन्य हिन्दी प्रेमियों और स्वयं सेवियों के साथ डॉ. श्रीवास्तव ने 'हिन्दी निकेतन' की स्थापना की। यह पहली हिन्दी-भाषी संस्था थी और इसकी बैठक श्री अरुण शर्मा और जया शर्मा के निवास स्थान पर हुई थी। जया शर्मा द्वारा सुझाया गया नाम 'हिन्दी निकेतन' सर्व-सम्मति से पास हुआ और इसकी पहली बैठक 1992 में हुई थी। इस संस्था के अन्य उद्देश्यों के अतिरिक्त त्रैमासिक समाचार-बुलेटिन 'सन्देश' और वार्षिक पत्रिका 'देवनागरी' निकालना था जिसमें श्रीमती सुधा जोशी संपादन कार्य करती थीं। लगभग 5 या 6 वर्ष के बाद देवनागरी का प्रकाशन बंद हो गया और इसी बीच 'सन्देश' का प्रकाशन भी बंद हो गया। 90 के दशक में जया शर्मा रेडियो प्रसारण में सक्रीय रूप से कार्य कर रही थीं, उनके साथ मिलकर डॉ. श्रीवास्तव ने भी अनेक रेडियो प्रसारण किये जिसमें हिन्दी फ़िल्मों के गीत, समाचार और वार्ताएँ प्रसारित की जाती थीं। इन गीतों, वार्ताओं के माध्यम से हिन्दी का प्रसार और लोकप्रियता दोनों ही बढ़ने लगे।

समर्पित हिन्दी-प्रेमियों के दल के साथ डॉ. श्रीवास्तव, प्रवासी भारतीयों के लिए इस भाषा को सीखने और सिखाने का सतत प्रयत्न करते रहे। कुछ वर्षों पश्चात् हिन्दी को पहली बार 1993 में 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में एक विषय के रूप में मान्यता प्रदान की गई।[7] इसके कारण विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई, अध्यापकों, विद्यालयों और पाठ्य सामग्री की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 1994 में पहली बार ऑस्ट्रेलिया में राष्ट्रीय स्तर पर 12वीं की वार्षिक परीक्षा में हिन्दी को भी सम्मिलित किया गया और 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिये विक्टोरिया राज्य में पहली बार हिन्दी की परीक्षा हुई। डॉ. श्रीवास्तव के नेतृत्व में हिन्दी कक्षाओं के पाठ्यक्रम का निर्धारण किया गया जिसे विक्टोरिया बोर्ड ने प्रकाशित करवाया।

1995 या 1996 में डॉ श्रीवास्तव ने 'हिन्दी-निकेतन' के माध्यम से एक नया कार्यक्रम 'वी. सी. ई. पुरस्कार समारोह' प्रारम्भ किया और वह था कक्षा 12वीं में हिन्दी विषय लेकर उत्तीर्ण छात्रों को पुरस्कार वितरित करना। यह कार्यक्रम आज तक चलता आ रहा है।

मैंने सन 1992 में अपने परिवार के साथ ऑस्ट्रेलिया प्रवास किया था, इसलिए मुझे उन सभी हिन्दी-प्रेमियों के चेहरे पर छाई ख़ुशी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनके संघर्ष की वजह से यह दिन उन्हें देखने को मिला था। विशेष बात यह थी कि ऑस्ट्रेलिया के किसी भी राज्य से विद्यार्थी हिन्दी की परीक्षा में बैठ सकते थे। यह सुविधा आज 30 वर्ष बाद भी उपलब्ध है। 1992 में मेरे यहाँ आने के कुछ महीनों बाद ही दिवाली के अवसर पर डॉ. दिनेश श्रीवास्तव से मुलाक़ात हुई व उनके कार्यों से मैं परिचित हुई थी। कविता व लेख लिखने में रुचि होने के कारण डॉ. श्रीवास्तव ने मुझे भी उनकी हिन्दी प्रचारक दल में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया। डॉ. श्रीवास्तव के प्रोत्साहन से मैं विभिन्न कार्यक्रमों में हिन्दी हास्य-व्यंग्य या कहानी लेखन आदि में सहायता करने लगी थी। परन्तु किसी दीर्घकालीन कार्य करने की ज़िम्मेदारी लेने के लिए उस समय अपने आपको तैयार नहीं कर पा रही थी।

हिन्दी जब पहली बार 11वीं और 12वीं की परीक्षा में शामिल हुई तो पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक दोनों की आवश्यकता महसूस हुई। इस दिशा में डॉ. श्रीवास्तव, सुधा जोशी और उनके सहयोगियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप लगभग सन 2000 में एक पाठ्यक्रम तैयार किया गया और ल ट्रोब विश्वविद्यालय के 'एशियाई स्टडीज़ विभाग' के अंतर्गत रीना टण्डन ने डॉ. दिनेश श्रीवास्तव और सुधा जोशी के नेतृत्व में '**ऑस्ट्रेलिया में समकालीन हिन्दी**' नाम से दो

भागों में पाठ्य पुस्तक लिखी।[8] उस समय यह पुस्तक बहुत उपयोगी साबित हुई। कुछ समय बाद दूसरी पुस्तक की आवश्यकता महसूस की गई और '**हिन्दी नक्षत्र**' नाम की यह पुस्तक भी दो भागों में प्रकाशित की गई।

2002/2003 में जब 'हिन्दी नक्षत्र' लिखने का कार्य प्रारंभ हुआ तो उसके प्रूफ रीडिंग और कंप्यूटर formatting के प्रश्न उठने लगे। उस समय मैं विश्वविद्यालय में बिज़नेस कंप्यूटिंग और इन्टरनेट प्रोग्रामिंग की शिक्षा ग्रहण कर रही थी। हिन्दी नक्षत्र के भाग-1 में मुझे प्रूफरीडिंग और कंप्यूटर formatting की ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गईं। कुछ समय पश्चात् जब भाग-2 का लेखन प्रारंभ किया तो उस पुस्तक के लिए भी प्रूफरीडिंग और कंप्यूटर formatting के साथ पुस्तक में कुछ पाठ भी मुझे लिखने के लिए कहा गया। ये दोनों पुस्तकें 2005 में मेल्बर्न के 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेज़ेस (VSL)' द्वारा प्रकाशित की गई थीं और आज भी 11वीं तथा 12वीं की हिन्दी कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रयोग की जा रही हैं।[9]

2004 में डॉ. श्रीवास्तव और कुछ हिन्दी-प्रेमी सहयोगियों ने श्री नीरज नंदा, जो मेल्बर्न से मासिक अंग्रेज़ी पत्रिका 'साउथ एशिया टाइम्स' का प्रकाशन प्रारम्भ करना चाहते थे और हिन्दी के प्रचार में सहायता भी करना चाहते थे, के साथ एक बैठक की गई। इस बैठक में 'साउथ एशिया टाइम्स' का हिन्दी परिशिष्ट 'हिन्दी-पुष्प' निकालने का निर्णय लिया गया। मैं भी इस बैठक में सम्मिलित थी और मुझे संपादक समिति के सदस्य के रूप में पत्रिका की प्रूफरीडिंग करने का उत्तरदायित्व दिया गया। बस, तब ही से 'हिन्दी-पुष्प' 'साउथ एशिया टाइम्स' के परिशिष्ट की तरह, (वर्ष 2020 के अतिरिक्त, जब यह परिशिष्ट दो माह में एक बार प्रकाशित हुआ था), प्रतिमाह प्रकाशित होता आ रहा है।[10]

सन 2011 में ऑस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (Australian Curriculum, Assessment and Reporting Authority 'ACARA') के प्रारम्भिक प्रारूप में एशिया और भारत के महत्व को स्वीकारने के बावजूद हिन्दी या अन्य किसी भारतीय भाषा को अन्य एशियाई भाषाओं की तरह स्थान नहीं दिया गया था। इस निर्णय से आहत डॉ. श्रीवास्तव ने हिन्दी प्रेमियों व अन्य सहयोगियों के साथ इस निर्णय के विरोध में मत जुटाए और परिणामस्वरूप 2012 में हिन्दी भी इसमें शामिल हो गई। यह सभी हिन्दी प्रेमियों के लिए बहुत प्रसन्नता की बात थी।[11]

2011 में डॉ. श्रीवास्तव ने हिन्दी को प्रसारित करने व हिन्दी शिक्षकों को सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से 'हिन्दी शिक्षा संघ' प्रारंभ किया जिसमें मैंने सहयोगियों के साथ सेक्रेटरी के रूप में दो वर्ष के अपने कार्यकाल में पुस्तकालयों से हिन्दी पुस्तकें एकत्रित करने जैसा कार्य किया। 2012 में 'Rangebank Primary School' में हिन्दी कक्षाएँ प्रारंभ हुईं और विद्यालय के सभी विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की तरह हिन्दी भी पढ़ाई जाने लगी। यह एक सुखद उपलब्धि थी। इसके बाद कुछ और विद्यालयों ने इसका अनुकरण किया।

2015/16 में डॉ. श्रीवास्तव के निरीक्षण में VSL ने अपने 'दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम' के अंतर्गत पहली बार हिन्दी यूनिट 1-4 को भी (11वीं व 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए) सम्मिलित किया। इस प्रोजेक्ट में मैं भी सहायक बनी और कार्यक्रम की लेखिका भव्या शाह थीं। इसी समय डॉ. दिनेश श्रीवास्तव के स्वास्थ्य और कार्यों के बोझ को देखते हुए इस कार्यक्रम के मार्ग दर्शन, एडिटिंग और प्रूफ-रीडिंग की पूरी ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी गई। जून, 2018 में डॉ. श्रीवास्तव के निधन के पश्चात, दिसंबर, 2018 में 'दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम' का कोर्स पूर्ण हो गया। 2019 में यूनिट 1-4 का लेखन समाप्त हुआ और VSL द्वारा विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाया गया। हिन्दी कक्षा में न जा पाने वाले विद्यार्थी अब हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं। 'दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम' द्वारा VSL ने अब एक नया हिन्दी एप भी प्रारंभ किया है।[12]

उसके बाद, प्राथमिक कक्षाओं के लिए भी विभिन्न लेखकों की अनेक पुस्तकों के प्रकाशन की पहल डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने की थी और उनके मार्गदर्शन में अनेक पुस्तकें VSL द्वारा प्रकाशित की गई हैं। डॉ. श्रीवास्तव ने इन पुस्तकों की एडिटिंग, प्रूफ-रीडिंग और कंप्यूटर formatting का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा था और VSL ने इन्हें समय-समय पर प्रकाशित किया था।[13]

प्रवासी भारतीयों की संख्या में वृद्धि तथा हिन्दी की लोकप्रियता में सतत प्रयास के कारण ऑस्ट्रेलियन सरकार ने अपने 'भाषा कार्यक्रम' के अंतर्गत 2018 में हिन्दी को भी सम्मिलित किया जो विद्यालय प्रारंभ करने से पहले नन्हें बच्चों के लिए उपयुक्त है। इस कार्यक्रम का नाम **Early Learning Languages Australia** (ELLA) है जिसकी शुरुवात 2015 में एक प्रयोग के रूप में हुई थी। भाषा ज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिए ऑस्ट्रेलियन सरकार ने यह कार्यक्रम प्रारंभ किया है। यह कार्यक्रम क्रीड़ा-युक्त, ऑनलाइन कार्यक्रम है जो वेबसाइट, रिपोर्ट आदि की सहायता से प्रस्तुत किया जाता है।[14]

अपने स्वास्थ्य को देखते हुए 2018 में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने मुझसे हिन्दी पत्रिका 'हिन्दी-परिशिष्ट' के संपादन का कार्यभार सँभालने का अनुरोध और आग्रह किया। लगभग पिछले पाँच वर्षों से मैं यह उत्तरदायित्व निभा रही हूँ।

डॉ. श्रीवास्तव को अनेक सामाजिक संस्थाओं तथा सरकार द्वारा विभिन्न प्रमाण-पत्र व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था। 1977 व 1978में उन्हें सामाजिक सेवा के लिए तत्कालीन विक्टोरियन गवर्नर द्वारा शील्ड प्रदान की गई थी। 2004 में फेडरेशन ऑफ़ इंडियन एसोसिएशन ऑफ़ विक्टोरिया' द्वारा प्रमाण-पत्र, 2009में 'ऑस्ट्रेलियन ऑफ़ द इयर के लिए नामांकन, 2010 में विक्टोरियन सरकार द्वारा उत्कृष्ट व्यक्तिगत समाज-सेवा के लिए बहु-सांस्कृतिक सम्मान आदि प्रदान किए गए थे।

हिन्दी के प्रति डॉ. दिनेश श्रीवास्तव का प्रेम और लगन गहन था, दशकों से अपनी अस्वस्थता से जूझते हुए वह निरन्तर हिन्दी के व्यापक प्रसार में जुटे रहे।

स्रोत:

1. साक्षात्कार, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, जुलाई, 2008
2. रॉकेट उपग्रह और अन्तरिक्ष यात्रा, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, प्रकाशन, 1967
3. साक्षात्कार, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, अगस्त, 2010
4. साक्षात्कार, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, नवम्बर, 2014
5. साक्षात्कार, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, अगस्त, 2014
6. साक्षात्कार, श्रीमती प्रतिमा श्रीवास्तव (डॉ. दिनेश श्रीवास्तव की धर्मपत्नी), जनवरी, 2018
7. साक्षात्कार, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, जनवरी, 2018
8. ऑस्ट्रेलिया में समकालीन हिन्दी, रीना टण्डन, जुलाई, 2003
9. हिन्दी नक्षत्र (भाग 1 और भाग 2), 2004
10. हिन्दी-पुष्प (साउथ एशिया टाइम्स का परिशिष्ट), https://www.southasiatimes.com.au/
11. https://www.acara.edu.au/
12. https://www.vsl.vic.edu.au/DE.aspx
13. प्राथमिक हिन्दी पाठ्य पुस्तक-स्तर 3 (2012), प्राथमिक हिन्दी पाठ्य पुस्तक-स्तर 4 (2021) आदि
14. https://www.ella.edu.au/media/9717/ella_program_information_sep2019.pdf

मेल्बर्न,
ऑस्ट्रेलिया

10 हिंदी के वैश्विक विकास में प्रौद्योगिकी-अनुवाद का योगदान

प्रो. (डॉ.) अर्जुन चव्हाण

भूमिका :

हिन्दी का प्रौद्योगिकी क्षेत्र में बढ़ता हुआ प्रयोग हम सब भारत वासियों के लिए गर्व का विषय है। इसी से हिन्दी अब विश्व पटल पर प्रथम भाषा की दावेदार बनने की ओर अग्रसर है। इसके जितने भी मूल कारण हैं उनमें से प्रमुख है प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग और प्रौद्योगिकी के हिंदी अनुवाद की प्रबल मांग। सन 1999 में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर होजुमितनाका ने अनुवाद शिखर बैठक में स्पष्ट किया था कि विश्व में चीनी का प्रथम और हिन्दी का द्वितीय स्थान है। भाषाविद प्रो. दिलीप सिंह की मान्यता है कि "स्वाधीनता के बाद हिन्दी अनेक दिशाओं में विकासोन्मुख बनी है।"[1] आज हिन्दी ने अनुवाद प्रौद्योगिकी के बल पर, तंत्रज्ञान में बढ़ते प्रयोग के बूते विश्वमंच पर प्रथम स्थान के दावेदारी की ओर उड़ान भरी है। "अंतराष्ट्रीय पटल पर हिन्दी आज विश्व की एक प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त भाषा है।"[2] संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान मिलना उसकी अहमियत को रेखांकित करता है। हिन्दी में प्रौद्योगिकी का अनुवाद युग की मांग बन गया है। यदि उत्तरोत्तर इसको बढ़ावा मिलता है तो हिन्दी को विश्वमंच पर प्रथम स्थान हासिल करने में देर नहीं लगेगी। प्रौद्योगिकी का आनुवाद हिन्दी के विकास का महामार्ग बनेगा इसमें संदेह नहीं। प्रस्तुत शोधपत्र प्रौद्योगिकी-अनुवाद विमर्श पर प्रकाश डालता है जिससे हिन्दी के वैश्विक विकास को गति मिल सकती है ।

1. प्रौद्योगिकी : संकल्पना एवं स्वरूप :

प्रौद्योगिकी वर्तमान समय के बहु चर्चित शब्दों में से एक है। 'प्रौद्योगिकी' शब्द मूलतः अँग्रेजी के 'टेक्नोलाजी' (Technology) का हिंदी पर्याय है। उसके लिए 'शिल्पविज्ञान' 'तकनीक' या 'टेकनीक' आदि समानार्थी शब्द भी प्रचलित रहे हैं । लेकिन इन सबके लिए वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित और प्रयुक्त शब्ध 'प्रौद्योगिकी' ही मिलता है। 'प्रौद्योगिकी' शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः 'उद्योग' शब्द से हुई है। जिसमे 'प्र' उपसर्ग, 'इक' और 'ई' प्रत्यय लगने से प्रौद्योगिकी शब्द बना। जैसे- प्र + उद्योग + इक + ई = प्रौद्योगिकी। मतलब वह तंत्र या तकनीक जो किसी उद्योग पर आधारित या केंद्रित है, 'प्रौद्योगिकी' है। अर्थात विविध उद्योगों से संबंधित अनुप्रयुक्त विज्ञान-विषयों का तंत्र या तकनीक ही प्रौद्योगिकी है। असल में विज्ञान के भी दो भेद है –(1) मूलभूत विज्ञान (Fundamental Science) और अनुप्रयुक्त विज्ञान (Applied Science) कहना होगा कि व्यावहारिक विज्ञान अथवा अनुप्रयुक्त विज्ञान का ही दूसरा नाम है 'प्रौद्योगिकी'

वस्तुतः प्रौद्योगिकी का स्वरूप सुनिश्चित है और व्यापक भी। वे सारे विषय प्रौद्योगिकी में निहित हैं जो अनुप्रयुक्त विज्ञान के अंतर्गत आते हैं। वैज्ञानिकता के कारण उन विविध विषयों की अपनी पारिभाषिक शब्दावली होती है। पारिभाषिक या तकनीकी शब्दावली के प्रयोग ने प्रौद्योगिकी को अधिक उपयोगी एवं पारदर्शी बनाया। सही और सुनिश्चित सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का स्वरूप ही नहीं बल्कि महत्व भी रेखांकित करता है।

2. प्रौद्योगिकी - अनुवाद की आवश्यकता :

'प्रौद्योगिकी' के अनुवाद की आवश्यकता प्रधानता: वैश्वीकरण के माहौल की उपज है।

उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्विकरण के मौहोल ने समय, श्रम और पैसे को बचाने के लिए वह तंत्रज्ञान विकसित किया जिसके बूते पर अत्यल्प समय में अधिकाधिक कार्यपूर्ति संभव हो सके। तीन एल पी जी (Liberalization, Privatization & Globalization) अर्थात उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्विकरण ने दुनिया को नए मोड पर ला दिया। वैश्विकरण अर्थात भूमंडलीकरण ने सारी दुनिया को एक भूमंडी में बदल दिया। 'ग्लोबल विलेज' अर्थात 'विश्वग्राम' की संकल्पना ने सम्पूर्ण विश्व को छोटा बना दिया। इसके मूल में अनुप्रयुक्त विज्ञान के रूप में विकसित तंत्रज्ञान अर्थात प्रौद्योगिकी को मानना पड़ेगा। बीसवी सदी ने वैज्ञानिक एवं औद्योगिक विकास को बुलंदियों पर पहुंचा दिया और एक्कीसवी सदी ने प्रौद्योगिकी के विकास को। ज्ञान विज्ञान के अंतर्गत आनेवाले सारे विषयों की अपनी प्रौद्योगिकी अस्तित्व में आई जिसके कारण हर क्षेत्र अधिकाधिक गतिमान बना। सच है कि आज दुनिया में हर क्षेत्र की अपनी प्रौद्योगिकी है। उसके बूते पर प्रत्येक क्षेत्र विकास और उन्नयन की दृष्टि से नया कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। लेकिन सच है कि प्रौद्योगिकी का सर्वाधिक विकास अँग्रेजी में हुआ और तत्पश्चात जर्मन, जापनी, रूसी और चीनी में भी। अत: विकासशील देशों को विकसित होने के लिए प्रौद्योगिकी का अनुवाद संजीवनी सिद्ध होगा। प्रौद्योगिकी का अनुवाद आधुनिक भारत की अनिवार्य आवश्यकता है। प्रौद्योगिकी के हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं -

1. जन सामान्य को अपने विकास का साधन उपलब्ध करना।
2. विभिन्न भाषा-भाषी समाज को विकास के केंद्र में आने का अवसर प्रदान करना।
3. वैश्विक स्तर पर विकास की स्वस्थ दौड़ में अपने देश को तत्पर रखना।

प्रौद्योगिकी – अनुवाद की स्रोत सामग्री -

वर्तमान समय में वे सारे उद्योग-क्षेत्र प्रौद्योगिकी में आते हैं जो अनुप्रयुक्त विज्ञान (Applied Science) अर्थात तंत्रज्ञान (Technology) पर आधारित होते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं 'प्रौद्योगिकी' नाम एक लेकिन उसके 'विषय-क्षेत्र' अनेक हैं । अत: प्रौद्योगिकी के जितने भी भेद या प्रकार मिलते हैं वे सब प्रौद्योगिकी के अनुवाद की स्रोत सामग्री हैं, जैसे-

विज्ञान प्रौद्योगिकी – Science Technology
वाणिज्य और व्यवसाय प्रौद्योगिकी– Commarce & Business Technology
बैंक प्रौद्योगिकी – Bank Technology
जनसंचार प्रौद्योगिकी – Media Technology
संगणक प्रौद्योगिकी – Computer Technology
अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी–EngineeringTechnology
आयुविज्ञान प्रौद्योगिकी–Medicine Technology
समाज विज्ञान प्रौद्योगिकी – Social Science Technology
भूगोल प्रौद्योगिकी – Geography Technology
पर्यावरण प्रौद्योगिकी–EnvironmentTechnology
परिवहन प्रौद्योगिकी– Transport Technology
पर्यटन प्रौद्योगिकी – Tourism Technology
शिक्षा प्रौद्योगिकी – Education Technology
प्रशिक्षण प्रौद्योगिकी – Training Technology
भाषा प्रौद्योगिकी – Language Technology
सूचना प्रौद्योगिकी – Information Technology
विधि/ कानून प्रौद्योगिकी – Law Technology
खाद्यान्न प्रौद्योगिकी – Food Technology

उपर्युक्त विषयों के अलावा अब कृषि, रक्षा, मौसम, कला, क्रीडा, तथा मनोरंजन जैसे अनेक विषय-क्षेत्र हैं जिनमें प्रौद्योगिकी ने अपनी जड़ें

जमाना शुरू किया है। अत: इन सब से लाभान्वित होना हो तो प्रौद्योगिकी के अनुवाद का कोई विकल्प नहीं मिलता। लेकिन हमारे यहाँ अब तक साहित्यिक अनुवाद ही अधिकतर होते रहे। उसकी तुलना में विज्ञान एवं तंत्रज्ञान या तकनीकी के अनुवाद अत्यल्प मिलते हैं। डॉ. भोलनाथ तिवारी की मान्यता आज भी सही प्रतीत होती है कि "साहित्यिक पुस्तकों की तुलना में वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद बहुत कम हुये हैं।"[3]

लेकिन प्रौद्योगिकी का बढ़ता महत्व, उपयोगिता एवं आवश्यकता को देखते हुए, कहना सही होगा कि भावी काल (आनेवाले समय) में इस क्षेत्र के अनुवाद की माँग सर्वाधिक होगी, इसकी मात्र बढ़ती जाएगी। इससे हिंदी और अनुवाद का महत्व बढ़ता रहेगा ।

4. प्रौद्योगिकी - अनुवाद के तत्व :

अनुवाद के कई प्रकार मिलते हैं जिनमें से प्रमुख हैं साहित्यिक और साहित्येतर अनुवाद। प्रौद्योगिकी का अनुवाद साहित्येतर अनुवाद की श्रेणी में आता है। यह मूलत: अनुप्रयुक्त विज्ञान और तंत्रज्ञान का अनुसार होने के कारण इसमें 'क्या कहा है' को अधिक महत्व होता है अर्थात इसमें भाव या आशय को देखा जाता है। साहित्यिक अनुवाद में 'क्या कहा है' के साथ-साथ 'कैसे कहा है' को ज्यादा महत्व दिया जाता है अर्थात इसमें भाव के अलावा शैली, अंदाज या नजाकत को भी देखा जाता है। फलतः प्रौद्योगिकी के अनुवाद और साहित्यिक अनुवाद में अंतर मिलता है। यही कारण है की प्रौद्योगिकी के अनुवाद के कुछ अपने सिद्धांत अर्थात तत्व मिलते हैं, जैसे- 1. अभिधात्मकता, 2 लक्षणा व्यंजना रहितता, 3. सूचनातमकता, 4. निवैयक्तिकता, 5. सुबोधता/बोधगभ्यता, 6. वस्तुनिष्ठता, 7. संप्रेषणीयत, 8. अनालंकरिकता, 9. वैज्ञानिकता, 10 . सरलता, 11. सुस्पष्टता और 12. एकार्थता ।

इन सभी तत्वों के अनुपालन से ही प्रौद्योगिकी के अनुवाद की सफलता संभव होगी। लेकिन इन तत्वों की जानकारी के अभाव में प्रौद्योगिकी के सफल अनुवाद की कल्पना असंभव कहनी होगी।

5. प्रौद्योगिकी - अनुवाद की समस्याएँ :

उपयोगिता की दृष्टि से देखे तो प्रौद्योगिकी का अनुवाद आज अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है। आज पिछड़ा वह नहीं जिसके पास साधनों का अभाव है बल्कि पिछड़ा वह है जो साधन सुविधाओं का प्रयोग करना नहीं जनता। इस संदर्भ में प्रौद्योगिकी की जानकारी होना, उसके विविध क्षेत्रों का परिचय तथा बुनियादी ज्ञान होना एवं उसके प्रयोग की प्रविधि का पता होना व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के उन्नयन एवं विकास के लिए भी उपयुक्त होता है। अँग्रेजी में विकसित प्रौद्योगिकी से भारतीय समाज, यहाँ के साधारण लोग उससे लाभान्वित होना चाहते हैं। फलत: प्रौद्योगिकी के अनुवाद की माँग बढ़ती गई। उसकी उपयोगिता ने दस्तक देना शुरू किया। तब प्रौद्योगिकी- अनुवाद नवसंजीविनी बनकर सामने आया। लेकिन उसका अनुवाद कार्य बड़ा मुश्किल है । इसमें अनेक समस्याएँ बाधाएँ बनकर मौजूद होती हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं –

5.1. पारिभाषिक शब्दावाली की समस्या :

प्रौद्योगिकी के अनुवाद से जुड़ी सबसे बड़ी और कड़ी समस्या है पारिभाषिक शब्दावली की। उसका उपलब्ध न होना, पर्याप्त न होना और समृद्ध न होना भी अनुवाद कार्य को मुश्किल बना देता है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह कि अनुप्रयुक्त विज्ञान (Applied Science) अर्थात तंत्रज्ञान ने हर विषय के क्षेत्र में अपनी उपयोगिता की दस्तक दे दी। फलतः तंत्रज्ञान अर्थात

प्रौद्योगिकी के कारण हर क्षेत्र समृद्ध होता जा रहा है। उसके कारण हर विषय शास्त्र या विज्ञान की कोटि में स्थापित होने लगा, महत्व पाने लगा। लेकिन जिस अनुपात में प्रौद्योगिकी को अपनाना प्रारंभ हुआ उस अनुपात में उन विषयों की पारिभाषिक शब्दावली बनाने का कार्य नहीं हो पाया। आज पर्यटन प्रौद्योगिकी, पर्यावरण प्रौद्योगिकी, शिक्षण प्रौद्योगिकी, भाषा प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, संगणक प्रौद्योगिकी तथा जनसंपर्क प्रौद्योगिकी जैसे अनेक क्षेत्र हैं कि जिसमें पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है अथवा अगर बन भी गई हो तो वह शैशवावस्था में मिलती है। स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्दावली का अभाव, उसका उपलब्ध न होना, अत्यल्प होना या पर्याप्त न होना आदि के कारण, प्रौद्योगिकी का अनुवाद कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न नहीं हो पाता।

5.2. समानार्थी शब्दों का अभाव :

स्रोत भाषा में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों के लिए अनुवाद कार्य में समानार्थी शब्दों का अभाव भी आज प्रमुख समस्या कहनी होगी। प्रौद्योगिकी का विकास मूलतः अँग्रेजी में होने के कारण उसके अंतर्गत आनेवाले विविध विषयों के लिए हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में समानार्थी शब्द न मिलना स्वाभाविक बात है। उदाहरण के लिए हम कुछ शब्दों को ले सकते हैं, जैसे –Internet, E-mail, on line, off Line, Twitter, Blogwring, Share Market, Nefty, Net Banking, Debit Card, Password, PIN, OTP (One Time Password), Digital Banking, Sen Secs, Youtube, Facebook, Instagram, Whatsaap, Skyp, Telegram, TikTok, ID No, Male Express Local आदि-आदि।

उपर्युक्त शब्द प्रौद्योगिकी संबंधी विविध क्षेत्र, जैसे बैंक प्रौद्योगिकी, संगणक प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, जनसंचार-माध्यम प्रौद्योगिकी आदि में सैकडों नहीं बल्कि हजारों की संख्या में प्रयुक्त हो रहे हैं। इनमें दिन-ब-दिन बढ़ोतरी हो रही है। लेकिन सच है कि इनके लिए न सुव्यवस्थित और सम्पूर्ण रूप से पारिभाषिक शब्दावली बनी है और न ही इनके समानार्थी शब्दों की खोज हुई है। भविष्य में भी विविध विषयों की प्रौद्योगिकी गति से विकसित होगी लेकिन उसके अनुवाद कार्य के लिए समानार्थी शब्दावली का अभाव अवरोध बनेगा इसमें संदेह नहीं।

5.3. पर्यायों के प्रयोग और प्रचलन की कमी :

यह सही है कि प्रौद्योगिकी ने अपने प्रवेश से हर क्षेत्र को लाभान्वित किया। उसके सहयोग एवं प्रयोग से हर क्षेत्र को लाभान्वित किया। उसके सहयोग एवं प्रयोग से प्रत्येक विषय विज्ञान या शास्त्र की कोटि में आया। व्यक्तिगत सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हर एक ने अपने उन्नयन और विकास में उसका फायदा उठाया। फलतः प्रौद्योगिकी मानव समाज के लिए 'कामधेनु या' 'कल्पवृक्ष' का विकल्प बन गई है। लेकिन यहाँ भी उतना ही कटु सत्य है कि प्रौद्योगिकी के अनुवाद के लिए हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में सही-2 पर्यायी शब्दों के निर्माण का सुनियोजित रूप से और गति से नहीं हो पाया। यही वह कारण है कि जिस गति से प्रौद्योगिकी परिव्याप्त होती जा रही है उस गति से उसका अनुवाद कार्य नहीं। इस दिशा में कहीं-कहीं विज्ञान और प्रशासन जैसे क्षेत्र में हिंदी पर्यायों का निर्माण भी हुआ है। भारत सरकार द्वारा स्थापित 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' ने इस दिशा में सुनियोजित रूप से अँग्रेजी से हिंदी में अनेक पर्यायवाची शब्दकोशों की निर्मिति का प्रशंसनीय कार्य किया है। लेकिन इनका प्रचलन बड़े उत्साह से होता हुआ दिखाई नहीं दिया।

निर्मित शब्दावली का जब तक प्रयोग नहीं होगा, प्रचलन नहीं होगा तब तक उसका कोई मतलब नहीं। ये सारे पर्याय उपेक्षित ही रहे हैं। सौतेली माँ की संतान की तरह। कहना होगा कि पर्यायों के प्रयोग एवं प्रचलन की कमी प्रौद्योगिकी के अनुवाद में बाधा बनी है। समस्या बनी है। इस पर गंभीरता से सोचना पड़ेगा।

5.4. भाषिक सूचनात्मकता की रक्षा करना :

वस्तुतः ज्ञान और तंत्र साथ-साथ विकसित होते हैं। यही कारण है कि ज्ञान की भाषा और तकनीकी भाषा, दोनों साथ-साथ विकसित होती हैं। दोनों के शब्दों का विकास भी साथ-साथ होता है। आगे भी होता रहेगा। अधिक स्पष्ट करना हो तो कह सकते है कि ज्ञान की भाषा में गहनता तथा गंभीरता होती है तो तंत्रज्ञान अर्थात प्रौद्योगिकी की भाषा में सरलता और सूचनात्मक। प्रौद्योगिकी के अनुवाद में भाषा के स्तरपर सूचनात्मकता को बनाये रखना चुनौती का काम है। जब विविध क्षेत्रों अथवा विषयों के शब्दों या भाषाओं में विविधता, बहुविधता, व्यापकता और गहनता हो तब उससे अनुवाद में सूचनात्मता और सरलता खतरे में आ जाती है। उदाहरण के रूप में हम सामान्य ज्ञान से संबंधित कुछ शब्दों को देखते है जिनसे अर्थ के स्तर पर व्यापकता, विविधता तथा गहनता निहित है और उनके अनुवाद में भाषिक सूचनात्मकता की रक्षा करना समस्या मूलक बन जाता है, जैसे –

Authority - अधिकारी, 2. अधिकारी व्यक्ति, 3. अधिकारी संस्था, 4. अधिकार, 5. अधिकारी विद्वान

Capital - दीर्घ अक्षर, 2. पूँजी, 3. मूलधन, 4. राजधानी, 5. स्तंभशीर्ष

General- आम, 2. प्रधान, 3. महा, 4. साधारण, 5. सामान्य, 6. सार्वजनिक

Part -1. अंश, 2. पूर्जा, 3. भाग, 4. भूमिका, 5. सहभाग

उपर्युक्त शब्दों का साधारण ज्ञान के क्षेत्र में जिस वैविध्य से अनुप्रयोग होता है उसकी सूचनात्मकता की रक्षा करना अनुवाद में कठिन होता है। विशेषतः प्रौद्योगिकी के अनिवाद में इस समस्या से जूझना आम बात है। ज्ञानात्मकता को सूचनात्मकता या सरलता में प्रतिस्थापित करना, परिवर्तित करना निश्चय ही कष्ट साध्य है।

5.5. अनेकार्थी शब्दों की समस्या :

अनुवाद मूलतः सही, समान एवं समुचित भाव-अंतरण है। प्रौद्योगिकी के अनुवाद में इसकी रक्षा होना अत्यधिक आवश्यक हो जाता है। इसलिए कि प्रौद्योगिकी वर्तमान समाज उन्नयन का सर्वाधिक सशक्त साधन है। अपने साध्य तक पहुँचाने वाला महत्वपूर्ण साधन। एक कीमती साधन। लेकिन उसका रास्ता बाधाओं से भरा है। अनेकारर्थी शब्दों का भंडार प्रौद्योगिकी के अनुवाद की गरिमा संवर्धित करता है तो अनेकार्थी क्षरित। जैसे –

Charge-

1. यह प्रशासन के क्षेत्र में 'कार्यभार' अर्थ देता है।
2. लेखा परीक्षण के क्षेत्र में 'व्यय' अर्थ देता है।
3. व्यापार/व्यवसाय के क्षेत्र में 'उधार' अर्थ देता है।
4. कानून के क्षेत्र में 'आरोप' अर्थ देता है।

Copy-

1. प्रचार के क्षेत्र में 'प्रति' (to) अर्थात देता है।
2. टंकण के क्षेत्र में 'कॉपी' अर्थ देता है।
3. परीक्षा के क्षेत्र में 'नकल' अर्थ देता है।
4. प्रशासन के क्षेत्र में 'प्रतिलिपि' (Copy to) अर्थ देता है।

Issue-

1. लेन-देन के बारे में 'निर्माण', 'जारी करना'
2. दम्पत्ति के बारे में 'संतान'
3. झगड़े के बारे में 'समस्या'
4. महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में 'मुद्दा'

उपर्युक्त सारे शब्द अनेकार्थी होने के कारण अनुवाद में समस्या उत्पन्न करते है। प्रौद्योगिकी के अनुवाद में एकार्थी शब्दों का प्रयोग अधिक जरूरी होता है। लेकिन जब निर्मिति पारिभाषिक शब्दावली में ही यदि अनेकार्थी शब्दों का समावेश हुआ हो तब अनुवाद को सही पर्याय के चयन हेतु प्राणायाम करना पड़ता है।

5.6. सामाजिक भिन्नता की समस्या :

समाज विज्ञान अत्यंत व्यापक विषय है। उसकी व्यापकता उसकी भिन्नता को दर्शाती है। लेकिन वही भाषा का उर्जा स्रोत भी होती है। वस्तुतः हर समाज का अपना खान-पान होता है, हर समाज के अपने विधि-विधान होते हैं, तीज-त्योहार होते हैं, रिश्ते-नाते होते हैं,वस्त्र- अलंकार-आभूषण होते हैं जिनकी अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है। यही शब्दावली सामाजिक भिन्नता को दर्शाती है लेकिन अनुवाद में सबसे बड़ी समस्या बन जाती है।

5.7. प्रयुक्तियों की समस्या :

वस्तुतः प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भाषा के रूपों में सर्वाधिक महत्व पूर्ण है प्रयुक्ति। प्रयुक्ति ही वह भाषा रूप है जो प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आनेवाले सभी विषयों को अधिकाधिक तांत्रिक बनाता है, उसे अनुप्रयुक्त विज्ञान की श्रेणी में रख देता है। 'प्रयुक्ति' भाषा के उस रूप को कहते हैं जो विषय विशेष के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। शब्दार्थ की दृष्टि से देखने से भी स्पष्ट होता है कि 'जो प्रयुक्त होता है, उसे प्रयुक्ति कहते हैं। भाषा का वह रूप जो प्रयोग में लाया अथवा जिसका प्रयोग किया, प्रयुक्ति कहलाता है। किसी क्षेत्र या विषय विशेष में बार-बार प्रयुक्त होने के कारण उसे उस क्षेत्र विशेष या विषय विशेष की प्रयुक्ति कहा जाता है। 'प्रयुक्ति' अँग्रेजी शब्द 'रजिस्टर' (registar) का हिंदी पर्याय है। असल में विभिन्न व्यावहारिक क्षेत्र में जो विशिष्ट भाषा प्रयोग या भाषा-व्यवहार होता है उसी के आधार पर भाषा में प्रौद्योगिकी अस्तित्व में आती है। वस्तुतः हम कह सकते है प्रयुक्तियाँ क्षेत्र विशेष या विषय के आधार कई प्रकार की मिलती हैं जिनमें से चार आधार प्रमुख मानने पड़ते है, जैसे –

1. क्षेत्र के आधार पर प्रयुक्तियाँ
2. विषय के आधार पर प्रयुक्तियाँ
3. प्रयोक्ता के आधार पर प्रयुक्तियाँ
4. शैली के आधार पर प्रयुक्तियाँ

वर्तमान काल में प्रत्येक क्षेत्र अनुप्रयुक्त विज्ञान एवं तंत्रज्ञान केंद्रित बनता जा रहा है। इससे प्रत्येक क्षेत्र, विषय प्रयोक्ता और शैली के अनुसार प्रयुक्तियाँ अस्तित्व में आ रही हैं। मानो प्रयुक्तुयों की बाढ़ सी आ गई हैं। लेकिन यह सच है इन प्रयुक्तियों की अद्यतन पारिभाषिक सूची बनाना अब भी बाकी है। इसके अभाव में प्रौद्योगिकी का अनुवाद करना कठिन हो जाता है। जैसे बैंक संबंधी प्रयुक्तियाँ। Fixed Deposit Account = सावधि जमा खाता, Current Account Holder=खातेदार, Maturity Date =परिपक्वता तारीख, Due Date = देय तारीख, Pay Seat = वेतन या भुगतान पत्रक, Not transferable = अहस्तांतरनीय, Re-invested = पुनर्निर्वेश, On Behalf of the Depositor = जमाकर्ता की ओर से आदि। यदि प्रत्येक क्षेत्र प्रयुक्तियों की अद्यतन पारिभाषिक सूची बनाई जाएँ तो

प्रौद्योगिकी के अनुवादक में ज्यादा प्राणायाम करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन आज की तारीख का यही तथ्य और सत्य है कि अधिकतर क्षेत्रों की प्रयुक्तियाँ सूची बद्ध हैं नहीं। परिणामतः अनुवाद कार्य में समस्याएँ बरकरार हैं।

5.8. नए प्रतीक, चिह्न, संकेत आदि का प्रयोग:

प्रौद्योगिकी मूलतः अनुप्रयुक्त विज्ञान (Applied Science) का रूप होने के कारण उसमें तकनीकी जानकारी को सही-सही रूप में और कम 'स्पेस' में सरलता से संप्रेषित करने की प्रवृत्ति बढ गई। इसके लिए चिह्न, प्रतीकों, संकेतों आदि के प्रयोग को खूब बढ़ावा मिला। लेकिन उससे प्रौद्योगिकी के अनुवाद कार्य में अनेक कठिनाइयाँ आने लगी। विशेषतः संगणक, इन्टरनेट, संचार माध्यम आदि के अनुवाद क्षेत्र में यह प्रयोग समस्यामूलक बन गया। इससे इस सामग्री का सही अनुवाद देना चुनौतीदायी बन रहा है।

5.9. कार्यशालाओं के आयोजन का अभाव :

पारिभाषिक शब्दावली, जो अनुवार्य कार्य में सब से महत्वपूर्ण साधन है, का निर्माण डॉ. हरीश कुमार, अध्यक्ष वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली तथा वी. पी. सिंह, उपनिर्देशक, शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के कार्यकाल में इन पंक्तियों के लेखक को अपने विश्वविद्यालय में सन 2001 में धर्म, दर्शन एवं इतिहास जैसे विषयों की पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की कार्यशाला के आयोजन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसमें एक सप्ताहभर की अवधि में करीब एक हजार पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो सका था। गोवा, मुंबई, कोल्हापुर जैसी अनेक जगहों पर विविध विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में ऐसी कार्यशालाओं के सफल आयोजन मानो इतिहास बन गए हैं। यह सिलसिला फिर से प्रारंभ होना आज जरूरी हुआ है।

5.10. प्रशिक्षण केंद्रों, कार्यकमों का न होना :

भारत में हिंदी को शिक्षा की माध्यम भाषा बनाने के पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। लेकिन प्रारंभ में पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण मानकीकरण की प्रक्रिया से न होकर पर्याय निर्माण की क्रिया के रूप में ही होना था। ऐसी शब्दावली मानक शब्दावली के विकास में बाधक सिद्ध हुई। इसलिए भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर मानक शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने के उद्देश्य से "1961 में भारत सरकार ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग की स्थापना की।"[4]

इस आयोग द्वारा विविध उपक्रम, कार्यक्रम आदि का पर्याप्त प्रयोग हुआ करता था लेकिन विगत एक-डेढ़ दशक से ऐसे उपक्रम कम हुए। पारिभाषिक शब्दावली निर्माण कार्य, अनुदान कार्य, तत्संबंधी प्रशिक्षण का रास्ता मुश्किल हो बैठा। इससे विशेषज्ञ, विद्वान और अनुभव सम्पन्न महानुभावों के मार्गदर्शन मिलना दुर्लभ हुआ। फलतः प्रौद्योगिकी के विविध क्षेत्रों के अनुवाद कार्य में समस्याएँ ही बढ़ती गई। आज जब कि प्रौद्योगिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र जिस अनुपात में फैलता जा रहा है, उसकी तुलना में अनुवाद हेतु न प्रशिक्षण केंद्र चलाये जा रहे हैं और न तत्संबंधी कार्यक्रम। परिणाम स्वरूप प्रौद्योगिकी का अनुवाद विविध समस्याओं का तथा गतिरोध का सामना कर रहा है।

5.11. विविध विदों के सहयोग एवं संगठन का अभाव :

वस्तुतः भारत को वैज्ञानिकों एवं विद्वानों की खान का देश कहना होगा। यहाँ न तज्ञों की कमी

है और न विशेषज्ञों की। गीत-संगीत-साहित्य ही नहीं आपितु कला-कौशल-कारिगिरी तक, वाणिज्य-उद्यम-व्यवसाय ही नहीं बल्कि ज्ञान-विज्ञान-तंत्रज् प्रौद्योगिकी (Technology) से सबके सब लाभ उठा रहे हैं। हमारे देश को विदों का देश कहे तो गलत नहीं होगा। यहाँ भाषाविद हैं, तंत्रज्ञानविद हैं, वैज्ञानिकविद हैं और प्रौद्योगिकीविद भी। लेकिन इन सारे क्षेत्रों के विद्वानों का न कोई संगठन है और न कोई मंच। फलतः अनुवाद जैसे कार्य में उनका योगदान अथवा सामुदायिक सहयोग मिलना न संभव हुआ है और न ऐसी स्थिति में भावी काल में मिलने की उम्मीद। विविध विदों से सहयोग न मिलने के कारण भी अनेक हैं जैसे-उचित पारिश्रमिक न देना, वह अल्प या अत्यल्प देना, सुविधाएँ प्रदान न करना, और यथोचित मान-सम्मान का ध्यान न रखना आदि। विशेषतः आधुनिक अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो में दुनिया के श्रेष्ठतम विद्वान भारत में मिलेंगे, जैसे–वैद्यकज्ञ, स्थापज्ञ, विधिज्ञ, राजनीतिज्ञ, अर्थज्ञ, तंत्रज्ञ और संगणकज्ञ आदि। अपने अपने क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित कर इतिहास बनानेवाले और दुनिया में अपना श्रेष्ठत्व स्थापित करनेवाले भारतीय विद्वान यदि चाहे तो सब कुछ कर सकते हैं, बदल सकते हैं। लेकिन अफसोस कि इन सबका ऐसा कोई मंच है न संगठन।

5.12. समस्याओं का व्यावहारिक समाधान :

आज दुनिया में शायद ही कोई व्यक्ति, समाज और देश होगा जो प्रौद्योगिकी के प्रताप से परिचित न हो। "हिंदी एस देश में ज्ञान की भाषा तो है ही, 21वीं सदी और उसके यात्रियों के सामने यह चुनौती है कि उसे विज्ञान की भी भाषा बना दें।"[5] इस दिशा में' प्रौद्योगिकी का अनुवाद महत्वपूर्ण कदम हैं। वस्तुतः ताज्जुबी तथ्य है कि आज प्रौद्योगिकी का अनुवाद जरूरी हुआ, वह युग की आवश्यकता बन गया लेकिन इस सच से मुख नहीं मोड सकते कि सर्वाधिक समस्याएँ तो प्रौद्योगिकी के अनुवाद में ही आती हैं। अब एक और सच का उद्घाटन करना है कि प्रौद्योगिकी के अनुवाद में भले समस्याएँ आ रही हैं लेकिन ऐसा नहीं उनका कोई समाधान ही नहीं। जो समस्याएँ अनुवाद को बाधित करती है, अवरोध बनती है, उनके समाधान भी यहाँ प्रस्तुत हैं ताकि अनुवाद कार्य सफलता से संपन्न हो। जैसे-

1. पारिभाषिक शब्द प्रयोग एवं प्रसार पर बल देना ।
2. पारिभाषिक शब्द प्रयोग हेतु संचार माध्यमों का सहयोग लेना ।
3. विविध वैज्ञानिक के माध्यम परिवर्तन पर बल देना ।
4. समाज विज्ञान के विषयों में माध्यम परिवर्तन का प्रयोग ।
5. भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाना ।
6. प्रयुक्तियों के प्रयोग पर बल देना ।
7. रोज़मर्रा की जिंदगी में प्रचलित पर्यायी शब्दों का प्रयोग।
8. लिप्यंतरण या लिप्यंतरित रूपों का प्रयोग ।
9. नवनिर्मित/प्रचलित शब्दों का स्वीकार, परिशिष्ट या कोष्ठक का प्रयोग ।
10. विश्व के व्यवहार में वैश्विक व्यवहत्त रूपों का प्रयोग।
11. अनुवाद के साधनों / संसाधनों का प्रयोग ।
12. विशेषज्ञों तथा विद्वानों से परामर्श ।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना होगा कि प्रौद्योगिकी मूलतः सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी है। अनुवाद उस अंडे को 'चिकन' बना देने का काम करता है जिससे

सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी पैदा होती है और उन अंडों से ऐसी अनेक मुर्गियाँ। तात्पर्य यह कि प्रौद्योगिकी और प्रौद्योगिकी का अनुवाद आज दोनों की उपयोगिता चरमसीमा पर है। "आज विश्वपटल पर हिन्दी एक सक्षम, समृद्ध, सुप्रतिष्ठित और संस्कार सम्पन्न राष्ट्र की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त भाषा है"[6] दुनिया के बड़े शक्तिशाली देश अमरीका, चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि ने जो तरक्की की उसके मूल में 'प्रौद्योगिकी' का उन्नत रूप ही दिखाई देगा । इसीलिए आज दुनिया का कोई देश प्रौद्योगिकी के मोह से मुक्त नहीं। फलस्वरूप दुनिया का हर विकासशील देश अपनी भाषा में प्रौद्योगिकी को लाना चाहता है जो अनुवाद के जरिए ही संभव है। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि प्रौद्योगिकी के अनुवाद की माँग या आवश्यकता जितनी अधिक है, उसके अनुवाद में समस्याएँ भी उतनी ही दुर्धर खड़ी हैं मगर अनूद्य सामग्री की हर समस्या का समाधान भी उपलब्ध है ।

सार यह हिन्दी के वैश्विक विकास में प्रौदोगिकी-अनुवाद विमर्श अहम भूमिका वहन करेगा। जब प्रौद्योगिकी का अनुवाद गति से सम्पन्न होगा तब उस समाज, राष्ट्र और विश्व का भी भला होगा जो अनुवाद करवा लेने में अग्रणी होगा। इससे हिन्दी के वैश्विक विकास को गति मिलेगी। उसका राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ेगा इसमें संदेह नहीं।

संदर्भ सूची :

1. दिलीप सिंह, हिन्दी भाषा चिंतन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 27,
2. 'गवेषणा' शोध पत्रिका, अंक 89, जनवरी – मार्च, 2008, केंद्रीय हिन्दी संस्थान प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ -10
3. .भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, शब्दकार, दिल्ली -06, 1972, पृष्ठ 114
4. वी. पी. सिंह सं. प्रशासनिक शब्दावली, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृष्ठ 9
5. अर्जुन चव्हाण, मीडियाकालीन हिन्दी : स्वरूप एवं संभावनाएं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्कारण 2005, पृष्ठ 36,
6. अर्जुन चव्हाण, विश्वमंच पर हिन्दी : विविध आयाम, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 08,

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर,
महाराष्ट्र

11 विश्व हिंदी सम्मेलन : उपलब्धियाँ और प्रासंगिकता

प्रो. (डॉ) एस.तंकमणि अम्मा

भारत देश और देशी संस्कृति के ज्वलंत प्रतीक तथा भारत की संपर्क भाषा, राष्ट्र भाषा और राजभाषा के तौर पर व्यवहृत हिंदी भाषा को आज वैश्विक स्तर पर जो स्वीकृति प्राप्त हुई है, वह विश्व भर के समस्त हिंदी प्रेमियों के लिए आह्लादकारी बात है। हिंदी केवल भारत की राजभाषा ही नहीं बल्कि भूटान, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद जैसे देशों की संपर्क भाषा भी है। कहीं-कहीं सह राजभाषा के रूप में भी यह भाषा व्यवहृत है। यह खाड़ी देशों तथा रूस, यूरोप, अमेरिका, कनाड़ा जैसे देशों में भारतवासियों के आपसी विचार-विनिमय की भाषा है। खाड़ी देश के अबूदाबी में अदालती भाषा के रूप में यह भाषा स्वीकृत है। हिंदी का वैश्विक विकास वस्तुतः अभूतपूर्व है। जनसंचार माध्यम, फिल्म, नूतत सूचना प्रौद्योगिकी आदि ने भी हिंदी के वैश्विक प्रचार प्रसार को बहुत आगे बढ़ाया है।

हिंदी भाषा को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठापित करने की दिशा में विश्व हिंदी सम्मेलनों ने अहम् भूमिका निभायी है। वस्तुतः विश्व-हिंदी सम्मेलन देश-विदेश के विविध क्षेत्रों में कार्यरत हिंदी सेवितयों और साहित्यकारों का सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय मंच है। अब तक भारत सहित विश्व के विविध राष्ट्रों में ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलन सफलतापूर्वक संपन्न हुए हैं। उनमें अत्यधिक उमंग और उत्साह के साथ सम्मिलित होनेवाले विशिष्ट व्यक्तियों, साहित्यकारों और अन्य प्रतिभागियों के मुँह से विश्व के विविध राष्ट्रों में होनेवाली हिंदी की भाषिक, शैक्षिक, साहित्यिक, पत्रकारिता और प्रौद्योगिकी संबन्धी गतिविधियों और प्रगति का सीधा और सटीक संज्ञान जो प्राप्त होता है वह विश्व हिंदी सम्मेलनों की अनूठी उपलब्धि है। प्रवासी भारतीयों में अपने देश की भाषा और संस्कृति के प्रति भावात्मक चेतना जगाने में ये सम्मेलन सफल साबित हुए हैं। यही नहीं वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रति जागरूकता पैदा करने में भी ये सम्मेलन समर्थ निकले हैं।

विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना

विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की मूल संकल्पना राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा वर्धा में स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने की थी। "सन् 1973 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित करने का मूल विचार देश के सामने रखा।"[1] सन् 1973 में देश के प्रमुख नेताओं से विचार विमर्श करके, हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र "वसुधैव कुटुंबकम्" का साक्षात्कार करने के लक्ष्य से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने विश्व हिंदी सम्मेलन का शुभारंभ महाराष्ट्र के नागपुर में करने की योजना बनायी।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : नागपुर (10 से 14 जनवरी 1975)

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन महाराष्ट्र के नागपुर में 10 जनवरी से 14 जनवरी, 1975 तक संपन्न हुआ। (10 जनवरी ऐतिहासिक महत्व की तिथि है, जो आगे चलकर "विश्व हिंदी दिवस" की तिथि बन गयी।) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वावधान में आयोजित इस प्रथम सम्मेलन में 30 देशों से 122 प्रतिभागियों ने साझेदारी की। भारतवंशी बहुल देश मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर

शिवसागर रामगुलाम की अध्यक्षता में संपन्न सम्मेलन का उद्घाटन भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा- "हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से हैं। (भारत की) ये सभी भाषाएँ देश की सांस्कृतिक विरासत की समान उत्तराधिकारी हैं। ये भाषाएँ भारत की राष्ट्रभाषाएँ हैं और उनमें से हिंदी भारत की राष्ट्रीय संपर्क की भाषा है, क्योंकि इस भाषा का परिवार सबसे बड़ा है"[2] केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. कर्णसिंह सहित कई गणमान्य व्यक्ति सम्मेलन में उपस्थित थे। सबने यही आशा व्यक्त की कि हिंदी भाषा द्वारा विश्व के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ भारत की मित्रता की कड़ियाँ सुदृढ़ हो जाएंगी। प्रस्तुत सम्मेलन में सर्वसम्मति से तीन प्रस्ताव पारित किये गये-

क. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलाया जाए।

ख. वर्धा में एक विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो।

ग. विश्व हिंदी सम्मेलनों की उपलब्धियों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए विचारपूर्वक एक योजना बनाई जाए।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन : मॉरीशस (28-30 अगस्त, 1976)

मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लूई स्थित महात्मा गाँधी संस्थान में 28 अगस्त से 30 अगस्त, 1976 तक द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में डॉ. कर्णसिंह की अध्यक्षता में भारत के तेईस सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल सहित सत्रह देशों के एक सौ इक्यासी प्रतिनिधियों ने भागीदारी की। इस सम्मेलन में दो प्रस्ताव पारित हुए-

क. मॉरीशस में एक हिंदी केन्द्र की स्थापना की जाए, जो पूरे विश्व की हिंदी गतिविधियों का समन्वय कर सके।

ख. एक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन हो जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके, जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन : दिल्ली (28-30 अक्तूबर, 1983)

भारत की राजधानी दिल्ली के इंद्रप्रस्थ स्टेडियम में तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन की राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष बलराम जाखड़ थे। सम्मेलन में विदेशों से आये 260 प्रतिनिधि सहित कुल 6566 प्रतिनिधि शामिल थे। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने विश्व भाषा के स्तर पर हिंदी को प्रतिष्ठित करने के प्रयासों को त्वरित गति देने का आह्वान किया। अन्यान्य विचारसत्रों के साथ प्रस्तुत सम्मेलन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में हिंदी में हुई प्रगति पर भी विस्तृत एवं सार्थक चर्चाएँ हुईं । देश-विदेश के इक्तालीस विद्वानों को सम्मेलन में सम्मानित भी किया गया।

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन : पोर्ट लुई – मॉरीशस (2 – 4 दिसंबर, 1993)

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 2 से 4 दिसंबर, 1993 तक मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ ने किया। "हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति" विषय पर सम्मेलन में विस्तृत चर्चाएँ चलीं। विश्व के विभिन्न राष्ट्रों से सम्मेलन में पधारे प्रतिभागियों ने अपने अपने राष्ट्र में हिंदी की प्रगति को साझा दिया। भारत तथा विश्व के समस्त राष्ट्रों के विशेषतः, भारतीय मूल के ज़्यादा जनसंख्यावाले देशों के बीच संचार माध्यमों में हिंदी को प्रमुख स्थान दिलाये जाने का अनुरोध किया गया। सम्मेलन में भारत और मॉरीशस के अतिरिक्त करीब दो सौ प्रतिनिधियों

ने भाग लिया तथा मॉरीशस के चार हिंदी विद्वानों को सम्मानित किया गया।

पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन : ट्रिनिडाड एवं टोबेगो(4-8 अप्रैल, 1996)

ट्रिनिडाड एवं टोबोगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में 4 अप्रैल से 8 अप्रैल तक पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था "आप्रवासी भारतीय और हिंदी"। सम्मेलन का उद्घाटन ट्रिनिडाड एवं टोबेगो के प्रधान मंत्री श्री वासुदेव पांडे ने किया। विभिन्न देशों के दो सौ सत्तावन प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। दूरदर्शन तथा सेटेलाइट द्वारा इस सम्मेलन का सीधा प्रसारण भी किया गया। पाँच भारतीय और तेरह विदेशी विद्वानों का सम्मान भी सम्मेलन में किया गया।

छठा विश्व हिंदी सम्मेलन : लंदन (14-18 सितंबर, 1999)

14 सितंबर से 18 सितंबर तक ब्रिटेन की राजधानी लंदन में छठा विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ। यू.के. हिंदी सम्मेलन समिति ने विविध संस्थाओं के सहयोग से इसका आयोजन किया था। समिति के अध्यक्ष थे डॉ. कृष्णकुमार तथा संयोजक थे डॉ.पद्मेश गुप्त। भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व भारत की तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्रीमती वसुन्धरा राजे ने किया था। 14 सितंबर को सम्मेलन का उद्घाटन उन्हीं के हाथों संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में 21 देशों से 700 प्रतिनिधियों की प्रतिभागिता रही थी। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था– "हिंदी और भावी पीढ़ी"। हिंदी को भारत की राजभाषा बनाये जाने के पचासवें वर्ष में 14 सितंबर को ही आयोजित इस सम्मेलन का ऐतिहासिक महत्व है। लंबे अरसे तक जिस ब्रिटेन के अधीन भारतवासी रहे थे, उस देश में सम्मिलित होकर भारत की अमर वाणी हिंदी को गुंजाने का मौका पाना सचमुच गर्व और हर्ष की ही बात रही थी। डॉक्टरी, इंजीनियरी, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी जैसे विविध क्षेत्रों में कार्यरत होकर ब्रिटेन में रह रहे भारतीयों के आनन्द का ठिकाना ही न रहा था। इस सम्मेलन में बीस विदेशी तथा तेरह भारतीय विद्वानों को सम्मानित किया गया।

सप्तम विश्व हिंदी सम्मेलन : सूरीनाम (5-9 जून, 2003)

भारत और सूरीनाम दोनों देशों की सरकारों के सक्रिय सहयोग से 5 जून से 9 जून, 2003 तक सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया। 5 जून की तिथि का सूरीनाम के इतिहास में विशेष महत्व है। 1873 में इसी दिन भारतीयों ने सर्वप्रथम सूरीनाम की धरती पर कदम रखे थे। इक्कीसवीं शती में आयोजित इस प्रथम सम्मेलन के संयोजक श्री जानकी प्रसाद सिंह थे। भारत के तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया था। इस सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था "विश्व हिंदी : नई शताब्दी की चुनौतियाँ"। सम्मेलन का उद्घाटन सूरीनाम के राष्ट्रपति श्री रोनाल्डो रोनाल्ड बनेन्शयान ने किया। प्रस्तुत सम्मेलन में बारह से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। सम्मेलन में दस भारतीय और सोलह विदेशी विद्वानों का सम्मान भी किया गया। अन्यान्य महत्वपूर्ण प्रस्तावों के साथ इस सम्मेलन ने यह प्रस्ताव भी पारित किया था कि संपूर्ण विश्व का ध्यान हिंदी की ओर आकृष्ट करने केलिए "विश्व हिंदी दिवस" मनाया जाए तथा इसके आयोजन का दायित्व भारत सरकार के विदेश मंत्रालय को सौंप दिया जाए।

अष्टम विश्व हिंदी सम्मेलन : न्यूयॉर्क (13-15 जुलाई, 2007)

विश्व हिंदी सम्मेलनों के गरिमामय इतिहास में एक नूतन अध्याय को जोड़ते हुए अमेरिका के न्यूयॉर्क में 13 से 15 जुलाई, 2007 तक आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन भारतीय विद्या भवन, न्यूयॉर्क के

सहयोग से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने किया। "विश्व मंच पर हिंदी" प्रस्तुत सम्मेलन का केंद्रीय विषय रहा था। संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय के सभागार में पहली बार (आठवें) विश्व हिंदी सम्मेलन का शुभारंभ होना, विश्व के समस्त हिंदी प्रेमियों और हिंदी सेवियों के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि ही थी। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्री आनंद शर्मा ने की। प्रधानमंत्री डॉ.मनमोहन सिंह का उद्बोधन आभासी माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री.बान.की. मून ने उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि के तौर पर सभा को संबोधित किया। "उन्होंने खचाखच भरे सभागार में उपस्थित हिंदी प्रतिनिधियों का दिल जीतते हुए कहा कि यह सचमुच एक ऐतिहासिक अवसर है। क्योंकि संयुक्त राष्ट्र का कोई महासचिव पहली बार विश्व हिंदी सम्मेलन में शिरकत कर रहा है।"[3] बीस भारतीय तथा बीस विदेशी हिंदी विद्वानों को इस सम्मेलन में सम्मानित किया गया। प्रस्तुत सम्मेलन में अन्यान्य प्रस्तावों के साथ हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के प्रभावी उपाय किये जाने तथा एक सर्वमान्य एवं सर्वत्र उपलब्ध यूनीकोड को विकसित और सर्वसुलभ बनाये जाने का प्रस्ताव भी पारित हुआ।

नवम विश्व हिंदी सम्मेलन : जोहान्सबर्ग (22-24 सितंबर, 2012)

नवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में 22 सितंबर से 24 सितंबर, 2012 तक आयोजित हुआ। जोहन्सबर्ग के सैंडटन कन्वेन्शन सेंटर में समारोह संपन्न हुआ। सम्मेलन स्थान का नाम "गाँधी ग्राम" रख गया था जो सर्वथा सार्थक रहा। दक्षिण अफ्रीका के गाँधी कहे जानेवाले नेल्सन मंडेला के नाम पर मुख्य सभागार का नाम "नेल्सन मंडेला सभागार" रखा गया था। इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय था "भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ"। गाँधी, हिंदी और दक्षिण अफ्रीका के प्रगाढ़ संबन्ध की ओर सभी विशिष्ट वक्ताओं ने संकेत किया और कहा कि बैरिस्टर मोहनदास को जोहान्सबर्ग की धरती और परिवेश ने ही महात्मा गाँधी बनाया था। उद्घाटन सत्र में भारत, मॉरीशस तथा दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि विराजमान थे। अध्यक्षता विदेश राज्य मंत्री श्रीमती प्रणीत कौर ने की। मुख्य अतिथि दक्षिण अफ्रीका के वित्त मंत्री श्री प्रवीन गोवर्धन थे। विभिन्न सत्रों में विविध विषयों पर विचार-विमर्श हुए। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में विशिष्ट योगदान देने के उपलक्ष्य में सम्मेलन में देश और विदेश के हिंदी विद्वानों को सम्मानित भी किया गया।

दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन : भोपाल (10-12 सितंबर, 2015)

दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 10 सितंबर से 12 सितंबर, 2015 तक मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय था "हिंदी जगत : विस्तार एवं संभावनाएँ। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय तथा मध्यप्रदेश शासन के संयुक्त तत्वावधान में यह सम्मेलन आयोजित हुआ था। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने किया तथा विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने प्रास्ताविक वक्तव्य प्रस्तुत किया। समापन भाषण गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने दिया। तीनों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के बारे में प्रेरक और उत्साहवर्धक विचार प्रस्तुत किये। अपने उद्बोधन में प्रधानमंत्री ने भाषा की ताकत की ओर प्रकाश डालते हुए कहा- "भाषा की अपनी एक ताकत होती है। इसलिए हमारे देश के पास मातृभाषा के रूप में हर राज्य के पास ऐसा अनमोल खजाना है, उसको हम कैसे जोड़ें और जोड़ने में हिंदी भाषा एक सूत्रधार का काम कैसे करे, इस पर ध्यान देना है। उस पर अगर हम बल देंगे, हमारी भाषा और ताकतवर बनती जाएगी।"[4] मध्यप्रदेश के

मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने सम्मेलन के अथ से इत तक अपनी महती उपस्थिति और उद्बोधनों से सम्मेलन को प्रौढ़ और गंभीर बनाया। यही नहीं, इस सम्मेलन को इतना शानदार और सफल बनाने में भी उनका तथा उनकी सरकार का उल्लेखनीय योगदान रहा। अपने प्रास्ताविक वक्तव्य में राष्ट्रभाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए सुषमा स्वराज ने कहा - "मैं तो साक्षी होती हूँ इस दृश्य की जब चीन के राष्ट्रपति श्री सी. जिनपिंग चीनी में बोलते हैं, राष्ट्रपति पुतिन रूसी में बोलते हैं, जापान के प्रधानमंत्री आबे जापानी में बोलते हैं, उस समय भारत के प्रधानमंत्री मोदी जी हिंदी में धाराप्रवाह बोलकर जिस तरह हमें गैरवान्वित करते हैं, उससे पूरे भारत का माथा ऊँचा हो जाता है।" सम्मेलन के विविध सत्रों में विदेशनीति में हिंदी, प्रशासन में हिंदी, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी, विधि और न्याय क्षेत्र में हिंदी, हिंदी और भारतीय भाषाएँ, गिरमिटिया देशों में हिंदी, विदेशों में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान, हिंदी पत्रकारिता और संचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता जैसे भाषा केंद्रित विविध विषयों पर विस्तृत विचार-विमर्श हुए। हिंदी के इस महाकुंभ में 39 विदेशी राष्ट्रों से सैकड़ों प्रतिनिधियों ने भाग लिया। भारत के हज़ारों की तादाद में प्रतिनिधियों ने अपनी उपस्थिति से सम्मेलन को गौरवान्वित किया जिसमें युवापीढ़ी का भी सराहनीय प्रतिनिधित्व रहा। इस सम्मेलन में 20 विदेशी तथा 20 भारतीय हिंदी विद्वानों का सम्मान भी किया गया।

ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन : मॉरीशस (18-20 अगस्त, 2018)

18 से 20 अगस्त, 2018 तक मॉरीशस में ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ। मॉरीशस में तीसरी बार आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में सन् 1975 में शुरू हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों की जययात्रा का विस्तार दृश्यमान रहा। भारत तथा अन्य बीसों देशों से दो हज़ार से ज़्यादा प्रतिभागीगणों ने इसमें अपनी उपस्थिति दर्ज की। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय तथा मॉरीशस सरकार के संयुक्त तत्वावधान में सम्मेलन का आयोजन हुआ था।

18 अगस्त को उद्घाटन सत्र शुरू हुआ। 16 अगस्त को दिवंगत भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, हिंदी प्रेमी, कवि तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी के स्वर को सर्वप्रथम बुलंद करनेवाले अटल बिहारी वाजपेयी जी के निधन ने यत्र-तत्र-सर्वत्र शोकछाया बिखेर दी। सभागार में एकत्रित हिंदी प्रेमी अटल जी की ये पंक्तियाँ भूल नहीं पाये-

"गूँजी हिंदी विश्व में, स्वप्न हुआ साकार।
राष्ट्रसंघ के मंच से, हिंदी का हुआ जयकार।
हिंदा का जयकार, हिंद हिंदी में बोला।
देश स्वभाषा प्रेम, विश्व अचरज में डोला।"

सत्र के आरंभ में अटलजी को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। तत्कालीन विदेश कार्य मंत्री सुषमा स्वराज जी, गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा जी तथा मॉरीशस की शिक्षा मंत्री लीला देवी दुकन लछुमन ने मिलकर दीप जलाकर सम्मेलन का उद्घाटन किया। सम्मेलन की "लोगो" पर बनी लघु एनिमेशन फिल्म का प्रदर्शन जो हुआ, उसने समस्त प्रतिभागियों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस छोटी फ़िल्म में दिखाया गया कि मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी डोडो जब डूबने लगता है तब भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर अपने ऊपर बिठाकर उसे बचाता है। फिर दोनों आनंद नर्तन करते हैं और गा उठते हैं – एक और एक दो नहीं, एक और एक है 11 (ग्यारह), ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन। "लोगो' के बारे में स्मारिका में उल्लेख है – "दोनों पक्षी हिंद महासागर में खड़े हैं और लहरें के रूप में अपने-अपने देश के झंड़ों के साथ हैं। चूँकि दोनों देशों के राष्ट्रीय प्रतीक एक साथ खड़े हैं, अतः यह दोनों देशों के बीच मित्रता

को दिखाता है और मॉरीशस में हिंदी की यात्रा को भी दर्शाता है।''[5] सुषमाजी ने अपने वक्तव्य में कहा कि गिरमिटिया देशों में लुप्त हो रही भाषा और संस्कृति को बचाने का दायित्व भारत का है तथा उसका पूरा निर्वाह सरकार की ओर से किया जाएगा।

इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय था "हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति'' जिसके विविध पहलुओं पर आगामी सत्रों में गंभीर विचार विमर्श हुए। समापन सम्मेलन में वैश्विक स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने की संकल्पना ली गयी। मॉरीशस के कार्यवाहक राष्ट्रपति महामहित परमशिवम पिल्लै ने अपने ओजस्वी एवं सारगर्भित भाषण में हिंदी के द्वारा "वसुधैव कुटुंबकम्'' की अवधारणा को संपुष्ट करने का संदेश दिया। समापन समारोह के दौरान भारत तथा विदेशों के हिंदी विद्वानों को सम्मानित भी किया गया। भारत, मॉरीशस तथा अन्य राष्ट्रों में कार्यरत विविध संस्थाओं को भी इस अवसर पर सम्मानित किया गया। एक मंच पर विविध देशों से आये हिंदी प्रेमियों, सेवियों, विद्वानों और साहित्यकारों का स्नेह मिलन अत्यंत अनूठा अनुभव रहा। अगले सम्मेलन में फिर से मिलने की आशा लेकर सब विदा हुए।

वैश्विक स्तर पर कोरोना महारोग के संक्रमण के कारण बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन स्थगित होता गया। अब फरवरी, 2023 को फीजी में "बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन'' आयोजित किए जाने की घोषणा हुई है।

विश्व हिंदी सम्मेलनों की उपलब्धियाँ

विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित संकल्पों तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अथक प्रयत्नों से भारत सरकार ने वर्धा में महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की है। मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना भी विश्व हिंदी सम्मेलन की ही देन है। विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के अनुसार हर साल दस जनवरी को "विश्व हिंदी दिवस'' के रूप में मनाये जाने का कार्यक्रम भी शुरू हुआ है। यह ध्यातव्य है कि 10 जनवरी, 1975 को ही प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का श्रीगणेश हुआ था। संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठापित करने का, भारत सरकार का प्रयास अभी ज़ारी है। आशा है कि अविलंब सफलता हासिल होगी। इन सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों के फलस्वरूप विश्व में हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता अवश्य बढ़ी है। जिन देशों में भारतीय मूल के लोग हैं वे अधिक सक्रिय हैं। विश्व के सब से बड़े लोकतंत्र राष्ट्र भारत की राजभाषा होने के कारण दूसरे राष्ट्रों में भी हिंदी शिक्षा और शिक्षण के कार्य में प्रगति आयी है। सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी में हुई अभूतपूर्व प्रगति के मूल में भी विश्व हिंदी सम्मेलनों का बड़ा हाथ रहा है। सर्वोपरि ये सम्मेलन संसार भर के हिंदी प्रेमियों, हिंदी सेवियों और साहित्यकारों के स्नेह मिलन के लिए उपयुक्त मंच प्रदान करने का श्लाघनीय कार्य भी करते हैं जहाँ वे खुले मन हिंदी की गतिविधियों की चर्चा कर सकते हैं। हिंदी को विश्वव्यापी पहचान दिलाने के साथ वैश्विक स्तर पर भाई-चारे के सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का श्रेय भी विश्व हिंदी सम्मेलनों को जाता है। जब तक हिंदी वैश्विक स्तर पर पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो जाएगी, विश्व भर के प्रवासी भारतीयों को आपस में जोड़ने की भाषा बन जाएगी, संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में उद्घोषित होगी, तब तक विश्व हिंदी सम्मेलनों में इस ओर प्रयास ज़ारी रहेगा। विश्व हिंदी सम्मेलनों की सार्थकता और प्रासंगिकता इसी में निहित है।

इन पंक्तियों की लेखिका को सातवें से ग्यारहवें तक के विश्व हिंदी सम्मेलनों में लगातार सम्मिलित होने, भाषण देने तथा सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन (सूरीनाम) में "विश्व हिंदी सम्मान'' से सम्मानित होने का जो सुयोग मिला है उसे यह

लेखिका विश्व हिंदी सम्मेलनों से अपने आप को प्राप्त उपलब्धि ही मानती है तथा अपने को धन्य भी समझती है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. हिंदी राष्ट्र की अस्मिता, सं.प्रो.रमेश दवे, श्री कैलाश चन्द्र पंत अमृत महोत्सव समिति, भोपाल, 2011, पृ.316
2. विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका, मॉरीशस, प्र.सं. प्रो राम मोहन पाठक, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, 2018, पृ.3
3. सम्मेलन समाचार समग्र, सं. डॉ. अशोक चक्रधर, 2007, पृ.1
4. हिंदी जगत विस्तार एवं संभावनाएँ, सं. प्रो. गिरीश्वर मिश्र, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, 2011, पृ.23
5. विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका, मॉरीशस, प्र.सं. प्रो राम मोहन पाठक, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, 2018, पृ. भीतरी आवरण

पूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्षा,

हिंदी विभाग और डीन,

केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

अध्यक्षा,

केरल हिंदी साहित्य अकादमी &

अखिल भारतीय हिंदी अकादमी,

तिरुवनंतपुरम।

12

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी के लिए प्रयास

सुशील कुमार राम

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देखन से लै करहूं, भाषा माही प्रचार।।"[1]

-भारतेन्दु हरिश्चंद्र

उपरोक्त दोहों से स्पष्ट है कि भारतेंदु भारत देश का विकास मातृ भाषा के जरिए ही स्वीकार करते थे। उनका मानना था कि भारतीय लोग विभिन्न प्रकार की कलाएं, शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान इत्यादि विभिन्न देशों से ग्रहण करें, किंतु उसका प्रचार मातृ भाषा हिंदी में ही करें ताकि भारतीय जनता उस ज्ञान को सरल एवं सहज तरीके से समझकर ग्रहण कर सके। हिंदी ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अप्रभंश की उत्तराधिकारिणी है| महात्मा गांधी ने कहा था- **"मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए|"[2]** उन्होंने यह भी कहा था कि- **"हिंदी का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है|"[3]**

हिंदी सभी आर्य भाषाओं की सहोदरी है यह भारत के बड़े हिस्से (लगभग 50% जनता) में मातृ भाषा की भूमिका निभा रही है। यही नहीं हिंदी प्रदेश के बाहर भी यथा- दक्षिण भारत, पूर्वी भारत इत्यादि क्षेत्रों में भी दूसरी या तीसरी श्रेणी की भाषा है। स्पष्ट है कि हिंदी स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दोनों ही युगों में संपर्क भाषा की भूमिका निभाते चली आई है। डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार- **"हिंदी का संपर्क भाषा रूप अपने आप उज्जवल हो रहा है| हिंदी भारत की संपर्क भाषा है ही| इतना बड़ा देश है, कहीं चले जाइए। हिंदी से आपके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं|"[4]** 14 सितंबर, 2017 के हिंदी दिवस समारोह पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने हिंदी भाषा के महत्व को स्वीकारते हुए कहा था- **"हिंदी अनुवाद की नहीं बल्कि संवाद की भाषा है। किसी भी भाषा की तरह हिंदी भी मौलिक सोच की भाषा है|"[5]**

भारत ने संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र पर 1 जनवरी, 1942 को हस्ताक्षर किया था। 25 अप्रैल से 26 जून, 1945 में चल रहे संयुक्त राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय संगठन सम्मेलन में भाग लिया था। भारत संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिधांतों का पुरजोर समर्थन करता है। संयुक्त राष्ट्र 1945 में स्थापित एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। वर्तमान में इसमें शामिल सदस्य राष्ट्रों की संख्या 193 है। इसका मिशन एवं कार्य इसके चार्टर में निहित उद्देश्यों और सिध्दांतों द्वारा निर्देशित होता है तथा संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अंगों और विशेष एजेंसियों द्वारा इन्हें कार्यान्वित किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के कार्यों में अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना, मानवीय सहायता पहुंचाना, सतत् विकास को बढ़ावा देना और अंतर्राष्ट्रीय कानून का भलीभांति कार्यान्वयन करना शामिल है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग है- संयुक्त राष्ट्र महासभा, सुरक्षा परिषद, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद, संयुक्त राष्ट्र न्यास परिषद,

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, संयुक्त राष्ट्र सचिवालय इत्यादि| इसके पाँच स्थाई सदस्य राष्ट्र है- अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस, चीन| **"संयुक्त राष्ट्र की कार्यविधि नियमावली के आठवें भाग में नियम 51 से 57 में संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं के संबंध में प्रावधान दिया गया है। इन नियमों में संयुक्त राष्ट्र महासभा तथा इसकी विभिन्न समितियों एवं उपसमितियों के लिए आधिकारिक तथा कार्य संचालन की भाषाओं की व्यवस्था की गई है|"**[6]

किसी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में अधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त तभी होगा जब जनरल असेंबली के दो-तिहाई सदस्य अपना समर्थन देंगे। इस तरह हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की कार्यविधि नियमावली 51 में संशोधन की आवश्यकता है। यदि हिंदी संयुक्त राष्ट्र में आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त कर लेती है तो हमारे देश भारत को प्रतिवर्ष 15 मिलियन डॉलर का खर्चा उठाना पड़ेगा। भारत के साथ-साथ जर्मनी और जापान भी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त करने हेतु संघर्ष कर रहे हैं। उन्हें भी संयुक्त राष्ट्र की धारा 51 के नियम रोक रहे हैं।

विश्व मंच पर हिंदी बोलने वालों की संख्या दूसरे स्थान पर है किंतु इसके बावजूद भी इसे संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त नहीं है। 01 जनवरी, 1975 में हिन्दी का 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' नागपुर में आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया था। उन्होंने हिंदी के महत्व को उजागर करते हुए कहा था- **"हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से एक है, करोड़ों लोगों की मातृ भाषा है और करोड़ों लोग इसे दूसरी भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं|"**[7] उन्होंने कहा था कि- **"हिंदी आज भारत की संपर्क भाषा है।"**[8] इसी सम्मेलन में मॉरिशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में अंतर्राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाने हेतु कहा था- **"मॉरिशस संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए सदैव तत्पर रहेगा।"**[9] मॉरिशस के प्रतिनिधि मंडल के नेता श्री दयानंद वसंत राय एवं सोवियत संघ के प्रतिनिधि मंडल के नेता डॉ. ई. पी. चेलिशोव ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता देने के लिए प्रस्ताव रखा। तब से लेकर वर्तमान समय तक, प्रथम सम्मेलन के वाक्यों को दोहराया जाता है और इस दिशा में हिंदी की स्थिति में सुधार भी आया है।

वर्ष 1977 में जब संयुक्त राष्ट्र महासभा का 32वां सत्र चल रहा था तब पहली बार वहां हिंदी की गूंज सुनाई दी थी। तत्कालीन समय में जनता पार्टी की सरकार थी तथा विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी थे जिन्होंने अपना पहला संबोधन हिंदी में दिया। विदेश मंत्री श्री. पी. वी. नरसिंह राव ने भी वाजपेयी जी का अनुसरण करते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपना भाषण हिंदी में ही दिया जिसकी सराहना करते हुए वाजपेयी जी ने कहा था- **"विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में हिंदी में अपने विचार व्यक्त करके भारत देश की अदम्य आकांक्षा को वाणी प्रदान की... ।"**[10] वर्ष 2002 में भी अटल बिहारी वाजपेयी जब भारत के प्रधानमंत्री थे तो उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपना भाषण हिंदी में दिया। भारत के वर्तमान रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने वर्ष 2010 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण का माध्यम हिंदी भाषा को चुना एवं पुख्ता प्रमाणों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र से अपील की कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के तौर पर शामिल किया जाए।

जनवरी, 2018 में भारत की विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने लोकसभा को संबोधित करते हुए कहा कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए संयुक्त राष्ट्र के 193 सदस्य देशों में से 129 सदस्य देशों (दो तिहाई वोट) की आवश्यकता है साथ ही उन्होंने यह भी अनुमान लगाया कि इसमें लगभग एक अरब रुपये खर्च करने पड़ सकते हैं। वर्ष 2018 में संयुक्त राष्ट्र ने हिंदी भाषा में ट्विटर अकाउंट और न्यूज़ पोर्टल करोड़ों हिंदी भाषी के लिए शुरू किया यही नहीं हर हफ्ते इस संघ ने हिंदी ऑडियो बुलेटिन जारी किया। इससे पहले वर्ष 2009 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने हिंदी न्यूज़ बुलेटिन की शुरुआत की थी, जिसकी अवधि दस मिनट की थी। इसका प्रसारण भारत सरकार के सहयोग से किया गया क्योंकि इसका पूरा खर्चा भारत सरकार द्वारा उठाया गया था।

संयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का कोई सदस्य यदि अपना भाषण हिंदी में देना चाहे तो उसे संयुक्त राष्ट्र अनुवाद की सुविधा उपलब्ध कराता है किंतु त्रासदी यह है कि भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य इसका लाभ कम ही उठाते हैं क्योंकि हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी में भाषण देना उन्हें गौरवपूर्ण लगता है। यदि प्रयोगकर्ता ही हिंदी के साथ ऐसा रुख रखेंगे तो अन्य देशों में हिंदी की स्थिति गौण बनकर रह जाएगी। 2018 में 'हिंदी@UN' परियोजना आरंभ की गई थी, जिसका उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी की पहुंच को सार्वजनिक बनाना एवं हिंदी भाषी जनता को इस संघ से संबंधित हिंदी माध्यम में सामग्री उपलब्ध कराना था। 10 जून, 2022 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव जारी किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य बहुभाषावाद को बढ़ावा देना था। संयुक्त राष्ट्र में भारत के प्रतिनिधि टी.एस. तिरुमूर्ति ने कहा है- **"संयुक्त राष्ट्र में बहुभाषावाद प्रस्ताव पारित हुआ। इसमें पहली बार हिंदी का जिक्र है| इसके साथ-साथ उर्दू और बांग्ला भाषा का भी जिक्र है।"**[11] उनका मानना है कि बहुभाषावाद संयुक्त राष्ट्र के बुनियादी मूल्यों में से एक है।

हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के कई मुख्य कारण है, यथा-

- हिंदी न सिर्फ भारत की संपर्क व राजभाषा है अपितु यह एक विश्व भाषा है क्योंकि यह भारत के अलावा अन्य देशों में भी अत्याधिक संख्या में लोगों द्वारा प्रयोग की जाती है। इस भाषा को समझने और बोलने वाले संसार के प्राय: सभी महाद्वीपों में फैले हैं। अतः हिंदी का भौगोलिक विस्तार विश्व की अन्य भाषाओं से अधिक है।
- आज का वर्तमान युग वैश्वीकरण का युग है। अतः विभिन्न देश की अर्थव्यवस्थायेँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई है और विभिन्न देशों में हिंदी भाषी लोग विभिन्न आर्थिक क्रियाकलापों में संलिप्त हैं अतः हिन्दी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनने की अधिकारिणी है।
- जिस प्रकार संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्य राष्ट्र यथा- चीन, फ्रांस, रूस, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका संयुक्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, ठीक उसी प्रकार हिंदी भाषा एशियायी भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस कारण भी हिंदी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनने की दौड़ में अग्रणी है।
- व्याकरणिक स्तर पर देखें तो हिंदी भाषा का शब्दकोश विश्व की अन्य भाषाओं की अपेक्षा सबसे बड़ा है। इसमें आर्य, द्रविड़, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, चीनी, जापानी इत्यादि भाषाओं के शब्दों का समावेश है। अतः हिंदी भाषा समावेशी धारना को भी पूर्ण करती है और स्वयं संयुक्त राष्ट्र भी समवेशी विकास की धारना का समर्थन करता है।

- संयुक्त राष्ट्र निर्माण वैश्विक प्रगति एवं वैश्विक समस्याओं के निपटान हेतु किया गया था। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य का क्षेत्र यथा- निबंध, उपन्यास, कविता, कहानी, आलोचना, जीवनी, नाटक इत्यादि विस्तृत है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कुल मिलाकर यथार्थवादी समस्याओं को उजागर किया जाता है साथ ही उन समस्याओं के समाधान के उपाय भी स्पष्ट किया जाता है।
- अंतरजाल (Internet) के क्षेत्र में भी हिंदी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विश्व मंच पर अपनी जड़ें मजबूत कर रही है।
- संचार के क्षेत्र जैसे- आकाशवाणी और दूरदर्शन भी हिंदी को वैश्विक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए भरपूर प्रयास कर रहे हैं। इस दिशा में टी.वी. चैनल के विभिन्न कार्यक्रम विश्व स्तर पर हिंदी भाषा में प्रसारित किए जा रहे हैं| इसके कारण देश तो देश विदेशों में भी हिंदी भाषा में भी जानकारी प्राप्त करने एवं सीखने के इच्छुक हो गए हैं।
- अध्ययन के क्षेत्र में देखे तो विभिन्न देशों में भी हिंदी शिक्षण विभाग खोले गए हैं। हिंदी का शिक्षण एवं प्रशिक्षण विश्व के लगभग 180 विश्वविद्यालय, शैक्षणिक संस्थानों में चला रहा है। केवल अमरीका में 100 से अधिक विश्वविद्यालयों, कॉलेजों में हिंदी पढ़ाई जा रही है।
- तकनीक के क्षेत्र में विभिन्न अद्यतन (Updated) ऐप हिंदी भाषा के प्रयोग में वृद्धि कर रहे हैं जिसमें प्रमुख है- Google Translate.

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में अनेक समस्याएं हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

- भारत की पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने संसद को एक भाषण में कहा कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में सबसे बड़ी समस्या संयुक्त राष्ट्र के नियम हैं। जनरल असेंबली के दो तिहाई सदस्यों के समर्थन मिलने के बाद ही हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा मिल सकता है।
- यदि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा मिल भी जाता है तो हिंदी को प्रतिवर्ष 60-70 करोड़ रुपये का खर्च वहन करना पड़ेगा।
- जब हिंदी को संविधान द्वारा भारत की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी तब ऐसा अनुमान लगाया गया था कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में स्थान मिलेगा और हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में कार्य करेगी किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका।
- वैश्विक स्तर पर अनेक अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय एवं अनेक संस्था-संस्थान खोले गए हैं किंतु जो लक्ष्य तय किए जाते हैं, उस लक्ष्य का 50% भी पूर्ण नहीं हो पाता| ऐसे में हिन्दी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनने के क्रम में शिथिल पड़ जाती है।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी हिंदी की स्थिति अंग्रेजी एवं फ्रेंच भाषा से बहुत पीछे है।
- विज्ञापन के क्षेत्र में भी हिंदी की स्थिति अत्यंत दयनीय है क्योंकि वहां भी अंग्रेजी का बोलबाला है।
- कानून के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा का दबदबा है जिसके कारण हिंदी की स्थिति दयनीय है। उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालयों में भी कानूनी पुस्तकों के नियम, अधिनियम हिंदी में तो उपलब्ध है किंतु उनका प्रयोग नहीं होता।

दिनांक 18 जनवरी, 1968 को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित राजभाषा संकल्प में यह व्यक्त किया गया है कि- **"यह सभा संकल्प करती है कि**

हिंदी के प्रसार एवं विकास की गति को बढ़ाने हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए इसके उत्तरोत्तर प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और फिर किए गए उपायों एवं की गई प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखी जाएगी और सभी राज्य सरकारों को भेजी जाएगी।"[12]

उपरोक्त उपबंधों (Provisions) से यह ज्ञात होता है कि भारतीय सरकार शुरू से ही हिंदी भाषा के राष्ट्रीय स्तर पर विकास को प्रोत्साहन देती आई है। प्रतिवर्ष हिंदी भाषा से संबंधित वार्षिक कार्यक्रम संपन्न किए जाते हैं, जिससे हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं विकास को गति मिलती रहती है। हमें और हमारी सरकार को हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना होगा और तब हिंदी की राष्ट्रीय पहचान हो सकेगी उसके बाद ही हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा का भी प्रबल दावेदार होगी। अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध उक्ति है- 'CHARITY BEGINS FROM HOME' अर्थात् पहला दान घर से शुरू होता है। हिंदी भाषा के संदर्भ में यदि इस उक्ति का अर्थ निकाले तो हिंदी की स्थिति को पहले राष्ट्रीय स्तर पर मजबूत करना होगा तब जाकर यह संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक बन सकेगी| इस संदर्भ में महादेवी वर्मा तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन समारोह में कहा था कि- **"अंतरराष्ट्रीय वही हो सकता है, जिसकी राष्ट्र में जड़े हो| जिसके राष्ट्र में जड़ ही नहीं है, वह क्या अंतरराष्ट्रीय होगा।"[13]**

'केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान' और 'केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो' ने ई-प्रशिक्षण के माध्यम से हिंदी भाषा में प्रशिक्षण देना आरंभ किया है जिसके जरिए हिंदी का राष्ट्रीय स्तर पर पकड़ मजबूत होते जा रहा है। 'यूनिकोड', 'कंठस्थ' (सॉफ्टवेयर) 'लीला राजभाषा', 'लीला प्रवाह' इत्यादि के माध्यम से हिंदी के व्यवहार को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ाया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा हिंदी के विकास में प्रयासों की सराहना करते हुए मार्च 2022 में गृह मंत्री अमित शाह ने कहा था कि- **"मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सभी केंद्रीय मंत्रालय/विभाग, कार्यालय, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एवं केन्द्रीय उपक्रम आदि राजभाषा प्रयोग संबंधी संवैधानिक दायित्वों के अनुरूप अपने दैनिक काम-काज में हिंदी पर अधिकाधिक बल देंगे और वर्ष 2022-23 के वार्षिक कार्यक्रम में उल्लिखित लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में अभीष्ट स्वैच्छिक प्रयास करेंगे।"[14]**

अतः हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार द्वारा हिंदी को महत्व दिया जा रहा है। हिंदी के प्रति हमें अपने दायित्वों पर भी विचार करना होगा। आवश्यकता है हिंदी के वैश्विक विकास के लिए एक ऐसी ठोस भूमि तैयार करने की जिससे हिंदी को अंतरराष्ट्रीय पहचान मिल सके। अब समय आ गया है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के साथ-साथ इसे संयुक्त राष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा का भी दर्जा दिलाया जाए। इसके लिए हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी। हमें चिंता के बजाय चिंतन करना होगा। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र में आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाना उतना भी कठिन नहीं है जितना कि हम वर्षों से सुनते आ रहे हैं। इस संदर्भ में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था कि- **"...जहां तक हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में एक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का प्रश्न है, यह कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना की ऊपर से दिखाई देता है।"[15]**

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाने के लिए 'हिंदी एवं संस्कृत प्रभाग' एवं 'भारतीय संस्कृति संबंध परिषद' (ICCR) महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इन्होंने विश्व के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा पीठ की स्थापना की है, जिसमें हिंदी से संबंधित प्रचार-प्रसार, अध्यापन एवं शोध कार्य किए जाते हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भारत को अपनी कूटनीति का प्रयोग करना होगा। भारत के संबंध रुस एवं संयुक्त राज्य अमेरिका से काफी अच्छे हैं एवं इन दोनों देशों का संयुक्त राष्ट्र में बोलबाला है। अतः भारत इनकी सहायता से संयुक्त राष्ट्र में स्थायी सदस्य का पद प्राप्त कर सकता है यदि भारत की स्थिति स्थायी सदस्य की हो जाती है तो हिंदी भाषा को स्वतः ही आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त हो जाएग। वर्तमान में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ऋषि सुनक हैं अतः संवेदनात्मक स्तर पर भी हिंदी भाषा को उनके जरिए संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाया जा सकता है| भारत संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न सहयोगी संस्थाओं में अनुदान देकर अपने सहयोग के लिए संयुक्त राष्ट्र में अपना वर्चस्व कायम कर सकता है| यह वित्तीय सहायता भारत की राजभाषा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की अधिकारी भाषा के रूप में स्थापित करने में कारगर साबित हो सकती है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए सकारात्मक होकर प्रयास करने होंगे ताकि हिंदी को अपना अधिकार मिल सके। हिंदी भाषा को जब अपना अधिकार मिल जाएगा तब भारत के विकास की गति और तीव्र होगी। अतः इस क्रम में हमें भारतेंदु के कथन **'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल'** को सही अर्थों में ग्रहण कर उसे व्यवहारिक बनाने की ज़रूरत है।

जयहिंद – जयहिंदी

संदर्भ सूची-

1. https://www.hindikunj.com
2. बाहरी, हरदेव, हिन्दी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2017, पृ. 158
3. वही, पृ. 158
4. वही, पृ.सं.165
5. https://blog.mygov.in
6. https://hindisarang.com
7. वही
8. चतुर्वेदी, जगदीशप्रसाद, हिन्दी एकता की कड़ी, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 1976, पृ. 01
9. https://hindisarang.com
10. वही
11. https://navbharattimes.indiatimes.com
12. www.rajbhasha.gov.in
13. https://hindisarang.com
14. www.rajbhasha.gov.in
15. https://hindisarang.com

पीएच.डी. शोधार्थी,

काज़ी नज़रुल विश्वविद्यालय, कोलकाता,

पश्चिम बंगाल

13

विश्वभाषा की ओर अग्रसर हिंदी

डॉ. अनिल सिंह

'संस्कृति' को भाषा की विकसित अवस्था का धोतक कहां जा सकता है। मनुष्य के रहन-सहन और बोली भाषा के कारण ही संस्कृति फलीभूत होती है। मानव जिस भौगोलिक परिवेश और प्रकृति के सानिध्य में जैसे- जैसे विचरण करता है, वैसे-वैसे उसकी बोली और भाषा निखरने लगती है। विविध बोलियों और भाषाओं को विकसित करने में धर्म के आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक स्वरूपों की अहम् भूमिका रही है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि अपनी सहजता, सरलता, ज्यादा से ज्यादा प्रयोग और व्यवहार में आत्मसात किए जाने के कारण बोधगम्यता व संप्रेषणीयता में सहज ही गहरी छाप छोड़ जाती है। बोली और भाषा ही वह सेतु है जो आस-पड़ोस से लेकर देश-विदेश तक जोड़ लेता है। निरंतर परिवर्तनशील होने के परिणामस्वरुप भाषा में हमें भिन्नता दिखलाई पड़ती है। इसीलिए भाषा के संदर्भ में कहा गया है "भाषा वह नीर के समान है जो अपनी संप्रेषणीयता और सहजता के चलते ही लोगों पर अपनी अमिट छाप छोड़ देती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी की मान्यता है, "भाषा, उच्चारण अवयव से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान प्रदान करते हैं।"[1] अतः मानव समाज का प्रत्येक व्यवहार एवं कार्य भाषा द्वारा ही संपन्न होता है।

मानव के विकास एवं प्रगति में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी ने कहा भी है "यह समस्त संसार अंधकार में लिपटा रहता, यदि शब्दों की ज्योति से दीप्त न होता।" साहित्य और संस्कृति को भली-भांति आत्मसात करने हेतु भाषा का गहन अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था एक तरह से भाषा ही है। "कोई भी भाषा प्रौढ़, परिनिष्ठित या साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेने के उपरांत स्थिर होने लगती है और उसका अंतिम रूप निश्चित सा हो जाता है, पर उसी समय उसको जो रूप सामान्य बोलचाल के लिए प्रयोग में चल रहा होता है, उसका प्रवाह व्यापक होने लगता है। उसके प्रवाह में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता और वह किसी पहाड़ी नदी की तरह अविच्छिन्न रूप से अपनी अपनी सहवर्ती बोलियों या आगंतुक भाषाओं के शब्द भंडार से ताल-मेल बिठा कर निरंतरता बनाए रखता है।भाषा के रूप स्थिर हो जाते हैं, पर भाषा अनंत होती है।"[2]

भाषा मात्र संप्रेषण का ही साधन नहीं है बल्कि मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। व्यक्ति के रहन-सहन, बात व्यवहार और संस्कार उसके बोली और भाषा से जानी जाती है। मानव के विकास और प्रगति में भाषा की अहम भूमिका होती है। भाषा ही वह अपूर्व शक्ति है जो सहस्त्रों वर्षों से प्रवाहमान है। आंतरिक ऊर्जा से निष्पन्न होने के कारण ही प्रतिकूल स्थितियों में भी इसके प्रयोग और महत्व रूपी प्रवाह को बाधित नहीं किया जा सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी भावनाओं और जरूरतों को पूर्ण करने हेतु जिन भाषा संकेतों को अपनाने लगता है धीरे-धीरे आगे चलकर वही अभिव्यक्ति का एक मानक रूप में जाने जानी लगती है। डॉ. लक्ष्मीकांत पांडे ने भी भाषा की महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा है "भारत के विभिन्न प्रांतों में विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले पाए जाते हैं, फिर भी ऐसा नहीं है कि वह एक-दूसरे से अपरिचित है। कहीं न कहीं से किसी न किसी रूप में जैसे मानव-मानव का संबंध है, वैसे एक भाषा का दूसरी भाषा के साथ होता है और यही भाषा जब जनसंपर्क की भाषा बन जाती है तो हमारे सारे क्रिया-कलाप उसी भाषा में संचालित होने लगते हैं।"[3] अतः भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु संदेश संवाहक का भी कार्य करता है।

हम देखते हैं कि देश-विदेश में धड़ल्ले से बोली जाने वाली हिंदी भारत संघ की राजभाषा और राष्ट्र की संपर्क भाषा है। आज दोनों ही भाषा का दायित्व गुरुतर है। राजभाषा हो या राष्ट्रभाषा दोनों को ही संवैधानिक मान्यता है। 'हिंदी' में ही व सामर्थ्य ज्यादा दृष्टिगत होता है जो श्रव्यमयता व भाषित शब्दों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर एक तरह से हमें नई शक्ति दी है। हम सब इस बात से भली-भांति अवगत हैं कि जिस हिंदी भाषा कि आज हम बात कर रहे हैं, उसका प्रारंभिक रूप एक तरह से मौखिक ही था। जो भावनाओं और अनुभूतियों के एक तरह से मूर्तिमान रूप ही है।

हिंदी के संदर्भ में व्यावहारिक रूप से विचार करते हुए डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ ने ठीक ही लिखा है, "भाषा सामाजिक वस्तु है और उस के माध्यम से ही सभी सामाजिक व्यवहार संपन्न होते हैं। यदि भाषा का समाज के विविध कार्यों में उपयोग न किया जाए तो वह भाषा सीमित दिशाओं में ही विकास कर पाएगी। हमारे देश में आधुनिक प्रयोजनों के लिए आज जिस हिंदी को अपनाया गया है, उसके आधार निम्नांकित प्रकार्य है - 'हिंदी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है।' 'हिंदी भारतीय भाषाओं के लिए अग्रणी है।' 'हिंदी निजी क्षेत्र में प्रयोजन परक भाषा के रूप में अपनी उपयोगिता सिद्ध करती है।"[4] अतः हिंदी का लक्ष्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

संस्कृत से हिंदी का जन्म होने के नाते ही संस्कृत भाषा से बहुत से शब्दों का हिंदी में आना स्वाभाविक है। जन सामान्य की आवश्यकतानुसार भाषा में शब्दों के नव निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। राज्यसत्ता के परिवर्तन से भी नए-नए शब्दों का आगमन होता है। अरबी-फारसी अंग्रेजी के शब्द आज हिंदी भाषा में घुल मिल गए हैं, उसके लिए सभ्यता के विकास के साथ-साथ राजनीतिक, सांस्कृतिक भी उत्तरदायी है। भाषागत परहेज के संदर्भ में डॉ.माधव सोनटक्के ने ठीक ही कहा है "जब भिन्न-भाषी राष्ट्र, प्रान्त, जाति या क्षेत्र एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तो दोनों ही एक दूसरे से कुछ-न-कुछ शब्द लेते हैं। हिंदी में देशी तथा विदेशी भाषा के कई शब्द आए हैं, आ रहे हैं, वह इसी कारण आज संचार माध्यमों के विकास के कारण संपूर्ण विश्व के देश एक-दूसरे के इतने करीब आए हैं कि अब कोई भी भाषा अन्य भाषाओं के शब्दों से परहेज नहीं कर सकेगी। हिंदी अपने देश की राष्ट्रभाषा है, अतःभारतीय अन्य भाषाओं के शब्द उसमें प्रयुक्त होने सहज नहीं अनिवार्य भी हुआ है।"[5]

हिंदी में ही वह दमखम है जो हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिंदी को ही यह गौरव प्राप्त होना चाहिए। हिंदी अपनी सार्वभौमिकता सरलता, सर्वप्रिय और व्यापकता के कारण ही आदान-प्रदान की दृष्टि से भी सर्वथा उपयुक्त है। इसीलिए हिंदी ही बोलचाल की भाषा होनी चाहिए। भले आज अंग्रेजी शिक्षण संस्थाएं जोर पकड़ रही है, अन्य भाषा भाषियों के बीच भी उनका बोलबाला बढ़ रहा हो। भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में हिंदी ही बोलचाल की भाषा के रूप में निरंतर सम्मान की दृष्टि से देखी जा रही है। महात्मा गांधी ने भी राष्ट्रभाषा के लक्षणों को इंगित करते हुए कहा था "भाषा वही श्रेष्ठ है इसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्य रूपी हिमालय में मिलेगा उसमें ही रहेगा। हिमालय में से निकलती हुई गंगा जी अनंत काल तक बहती रहेगी, ऐसे ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सूख जाता है वैसे ही संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिंदी की दशा होगी।"[6]

प्रौद्योगिकी की दृष्टि से ही नहीं हिंदी आंतरिक शक्ति से अर्थात हर दृष्टि से एक समृद्ध भाषा है। हिंदी का प्रयोग करने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। जिस भाषा का व्याकरण विज्ञान-सम्मत होगा और जिस भाषा की लिपि कंप्यूटर की लिपि होगी, वही भाषा संपूर्ण विश्व में लोकप्रियता और ख्याति प्राप्त करेगी। भारत में निजीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने के बाद जिस तरह से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाषाई वर्चस्व की रक्षा करने की चिंता हुई, ऐसे में एक बार लगा कि जैसे हिंदी फिर पिछड़ जाएगी क्योंकि अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों में अंग्रेजी को विस्थापित करना बल्कि इसके बारे में सोचना भी असंभव था। परंतु अपनी भाषायी गरिमा की रक्षा हेतु उस प्रतियोगिता की होड़ में अपने को योग्य प्रतिद्वंदी के रूप में

उपस्थित करना जरूरी हो जाता है। भाषा यदि परिस्थितियों के मुताबिक अपना विकास नहीं करेगी तो निश्चित तौर पर वह धीरे-धीरे समाप्त होने की ओर बढ़ जाएगी और हिंदी जैसी समृद्ध भाषा, जिसने कि हजारों वर्षों में अपने इस रूप को प्राप्त किया है और वह समर्थ है, कि किसी भी तरह की परिस्थितियों में वह अपने को ढाल सकती है। इन्हीं संदर्भों को हमारे सामने रखते हुए डॉ. मणिक मृगेश लिखते हैं, "भले ही आपकी कंपनी का निजीकरण हो जाए, लेकिन यदि आपने अपने को ऑलराउंडर बना लिया है तो आपका कुछ नुकसान नहीं होगा। समयानुकूल हमें अपने को परिवर्तित करना होगा।..... हिंदी से जुड़े लोगों को हिंदी विभाग के साथ-साथ मानव संसाधन व मानविकी विभागों के कामकाज में दक्ष होते रहना पड़ेगा। फिर आपका कोई भी निजीकरण बाल बांका नहीं कर पाएगा। आप कह सकेंगे कि हमें कोई भी विभाग सौंप दिया जाए, करेंगे।..... इसलिए निजीकरण से डरने की कोई बात नहीं है। निजी क्षेत्रों में भी भविष्य उज्जवल है।"7 कहने का अर्थ यह है की दुनिया में परिवर्तन एक निश्चित नियम है और इस परिवर्तन के साथ-साथ खुद को समायोजित करना और उसके लिए अपने को तैयार करना जरूरी प्रक्रिया का हिस्सा है। हमें भी इस बात का ध्यान रखना होगा। यह न केवल अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक है बल्कि भाषाई अस्मिता को व्यापक बनाने के लिए भी जरूरी है।

हिंदी एक पुरानी भाषा ही नहीं बल्कि जीवंत भाषा है। उसकी जड़ें काफी गहरी है और धरा में काफी दूर तक फैली हुई है। कोई भी भाषा बोलचाल में ज्यादा से ज्यादा प्रयोग लाए जाने पर ही निखरती है। कुछ लोग भली-भांति हिंदी जानते हैं, समझते हैं, पढ़ते लिखते हैं, इसके बावजूद भी आपस में मिलने पर हिंदी में बोलना अपना डिवैल्यूवेशन समझते हैं। भले ही गलत सही अंग्रेजी में बात करेंगे, मानो अंग्रेजी में बात करना एक तरह से स्टेटस समझते हैं। हिंदी के प्रति ऐसी धारणा रखने वालों की सोच एक तरह से हिंदी के प्रति उनकी कुंठित मानसिकता को उजागिर करता है।

अपनी वैज्ञानिक लिपि, सरलता, सहजता और संप्रेषणीय होने के नाते हिंदी न केवल बोलचाल की भाषा है बल्कि उसे लोकप्रिय भाषा का दर्जा भी प्राप्त हो रहा है। हिंदी अब न केवल भारत की राष्ट्रभाषा है अपितु विश्वभाषा की अधिकारिणी है। वैश्विक स्तर पर हिंदी के भविष्य को निखारने और संवारने हेतु समयानुकूल उन रूपों में ढलना होगा। भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी को अपनी खुशबू और स्वाभिमान को बनाए रखने हेतु तत्पर रहना होगा। वैश्विक स्तर पर जिनका संबंध सीधे-सीधे बाजार से है वह भी अब मजबूरन हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वही भाषा टिक सकती है जिसकी सामाजिक, सांस्कृतिक भाषा के साथ-साथ धर्म तथा दर्शन भी सशक्त हो तभी वह गैर समूह को खींच पाने में पूर्णत: सफल हो सकेगी। उक्त सभी वैशिष्ट्य हिंदी में परिलक्षित होता है। इसी का परिणाम है कि आज विश्व के अन्य देशों में हिंदी बोली, समझी और पढ़ी जा रही है। संचार माध्यमों और हिंदी फिल्मों व संगीत की भूमिका भी हिंदी को लोकप्रियता प्रदान करने में महत्वपूर्ण रही है। फिजी, त्रिनिदाद, गयाना, मॉरीशस, सूरीनाम आदि देशो ने हिंदी को अपनाया है। वही अमेरिका कनाडा, सिंगापुर ब्रिटेन, फ्रांस, नेपाल, चीन, जापान, कोरिया आदि देशों के रह रहे अप्रवासी भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति का छोड़ नहीं पाए हैं। आज भी हिंदी को विश्व भाषा बनाने का वास्तव में मुख्य श्रेय यदि किसी को दिया जाना चाहिए तो वे है - प्रवासी भारतीय।

आज भी भारत के इलाहाबाद, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, दिल्ली आदि विश्वविद्यालयों में अन्य देशों के विद्यार्थी यहां हिंदी पढ़ने के लिए आया करते हैं। विश्व मंच पर हिंदी की अहम भूमिका है। दुनिया का शायद ही कोई कोना बचा हो जहां हिंदी न पहुंची हो। वैसे भी हिंदी के बिना आब किसी की भी दाल गलने वाली नहीं है। हिंदी के बिना हमारा कोई भी कार्य संपन्न नहीं हो पाएगा। आज हिंदी पूरे विश्व में सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हिंदी हमारी जान, मान और सम्मान ही नहीं बल्कि 'हिंदी' हमारी अस्मिता की एक विशिष्ट पहचान है। हिंदी भाषा भारत का अस्तित्व ही नहीं बल्कि उसकी एक लंबी और समृद्ध परंपरा है। हिंदी

में ही समूचे विश्व को 'वसुंधैव कुटुंबकम' के सूत्र में बांधे रखने की शक्ति है तो वह हिन्दी में ही है। इस प्रकार कहा जा सकता है विभिन्न भाषाओं की समृद्धि के बावजूद हिंदी भाषा का रथ जिस गति से बढ़ रहा है निश्चित ही आने वाले दिनों में विश्व भाषा के रूप में जानी जाएगी।

अनेकता में एकता का नारा बुलंद करने वाले भारत का सांस्कृतिक समन्वय बेजोड़ है। हिन्दी के माध्यम से ही वैश्विक स्तर पर भी भारतीय संस्कृति अपनी आभा फैलाये हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी स्वयं में विश्व सम्माज को समाहित किए हुए है।

आज का युग सूचना क्रांति का युग है और ऐसे समय में बहुत सारी वैश्विक स्थितियां बदल रही हैं। चाहे संस्कृति हो या भाषा, भारी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। ऐसे समय में हिंदी को यदि सर्वसम्मत ढंग से आगे बढ़ाना है तो कुछ बातों का ध्यान रखा रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इन्हीं आवश्यकताओं पर बल देते हुए डॉ. हरिमोहन लिखते हैं, "जहां तक हिंदी का प्रश्न है सूचना युग में हिंदी भाषा अपनी जगह बना रही है। सूचना-क्रांति के इस युग में कोई भी भाषा, संक्षेप में कहें तो, 'विश्व भाषा' उसी स्थिति में बन सकती है, जब वह (1) नित नई प्रौद्योगिकी के साथ चल सके, (2) तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर सकें, नई शब्दावली को ग्रहण कर उसका प्रयोग बेहिचक कर सके, (3) इतनी लचीली हो कि तमाम तरह के संरचनात्मक एवं अर्थों के दबाव को झेल सके, (4) इतनी सामर्थ्यवान हो कि दुनिया भर के परिवर्तनों से टूटे-बिखरे और मरे नहीं; जीवंत बनी रहकर उन परिवर्तनों को आत्मसात कर सके, (5) मशीन और मनुष्य के बीच सहजतापूर्वक संबंध स्थापित कर सके, (6) विश्व की बड़ी आबादी द्वारा प्रयोग में लाई जा सके।"

इस तरह हिंदी का भविष्य उज्जवल है। हिंदी में समय के साथ चलने की सामर्थ्य है, उसमें लचीलापन कितना है, यह तो हम सभी जानते हैं। कठिन से कठिन परिस्थितियों में उसने अपनी उपयोगिता और जीवंतता को बनाए रखा है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। हिन्दी का प्रयोग और व्यवहार निश्चित ही हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए सतत गतिशील है। आज कंप्यूटर क्रांति के दौर में वह कंप्यूटर के अनुरूप भाषा भी बन चुकी है और विश्व के कई देशों में इसका प्रयोग हो रहा है। इस तरह हम कह सकते हैं कि यह हमारे लिए अत्यंत सुखद है कि हिंदी विश्व भाषा बनने के पथ की ओर अग्रसर है।

संदर्भ:

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा-विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, सं 2012 पृ. 4
2. हरिश्चंद्र पाठक, हिंदी भाषा इतिहास और संरचना, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, सं 2017, पृ. 13
3. लक्ष्मीकांत पाण्डेय, संचार माध्यमों में हिंदी का प्रयोग, ज्ञानोदय प्रकाशन, कानपुर, सं 1999, पृ. 1
4. विजय कुलश्रेष्ठ, प्रयोजनपरक हिंदी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं 2011, पृ. 1
5. माधव सोनटक्के, प्रयोजनमूलक हिंदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं 2008, पृ. 183
6. कै.भाटिया, मो.चतुर्वेदी, हिंदी भाषा विकास और स्वरूप, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2018 पृ.147
7. मणिक मृगेश, भूमंडलीकरण, निजीकरण व हिन्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2012, पृ.14-15

प्र. प्राचार्य
हिंदी विभागाध्यक्ष एवं संयोजक,
हिंदी अनुसंधान केंद्र
एस.बी.महाविद्यालय,शहापुर-ठाणे
महाराष्ट्र, भारत

14

समकालीन भाषा, साहित्य और तकनीक

डॉ. सत्यनारायण स्नेही

इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी उपलब्धि है–सूचना प्रौद्योगिकी का विकास। इस विकास में जहाँ मानवीय सरोकारों में बदलाव आया है, वहीं मानवीय चिंताओं, मूल्यों, मान्यताओं, प्राथमिकताओं और धारणाओं में परिवर्तन भी हुआ है। वास्तव में मानवीय चिंतन और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति किसी–न–किसी रूप में भाषा द्वारा होती है और इसका परिमार्जन तथा परिष्कार आदिकाल से ही साहित्य द्वारा होता रहा है, लेकिन तकनीक के इस युग में भाषा और साहित्य–अध्ययन के प्रतिमान निरन्तर बदल रहे हैं। दरअसल, कोई भी विषय रहा हो, उसे समझने और समझाने के लिये एक उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होती है, बिना भाषा के किसी भी अवधारणा की परिकल्पना असंभव है। किसी देश की जाति, धर्म, समुदाय, संस्कृति, अस्तित्व और अस्मिता की पहचान उसकी भाषा द्वारा होती है और उसकी बौद्धिकता, वैचारिकता एवं चेतना का परिचायक वहाँ का साहित्य होता है।

भाषा आत्म–उत्खनन अथवा आत्मान्वेषण का सर्वोप्युक्त माध्यम है। भाषा वास्तव में मनुष्य की देह का अदृश्य अंग है। भाषा और आत्मबोध का यह संबंध मनुष्य को समस्त जीव–जन्तुओं से अलग एक अद्वितीय श्रेणी में ला खड़ा कर देता है। भाषा और मनुष्य जीवन में उतना ही गहरा संबंध है जितना माता और संतान में होता है। सब जीवों में शाब्दिक भाषा मात्र मनुष्य के पास ही है। भाषा मनुष्य को जगन्नियंता की दी हुई इच्छा शक्ति प्रसाद है। वह गतिशील तत्त्व है; वह अतीत का संसार ढोकर ले आती है और भविष्य की संभावनाओं की ओर आगे बढ़ती है।[1] मनुष्य–रचित संसार में जो भी अवधारणाएँ परिलक्षित होती हैं, उसका निर्माण सर्वप्रथम भाषा द्वारा ही होता है। पहले व्यक्ति प्रत्येक संकल्पना के विषय में चिंतन–मनन करता है, तदोपरांत उसे मूर्त रूप देता है। अतः मनुष्य का चिंतन, तदनुरूप सृजन और संरक्षण भाषा द्वारा ही संभव है। प्रसिद्ध साहित्यकार निर्मल वर्मा के अनुसार–भाषा अभिव्यक्ति और भाव सप्रेषण की कला है। किसी भी सभ्यता या संस्कृति को जीवंत और सुरक्षित बनाए रखने में भाषा की भूमिका सर्वोपरि है। जिस समाज की भाषा समर्थ और समृद्ध होगी वह समाज उतना ही सुसंस्कृत और सुदृढ़ कहलायेगा। इस तरह भाषा किसी भी जाति अथवा समाज की शक्ति और अस्मिता का प्रमाण है।[2] भाषा के द्वारा ही मनुष्य चेतन और अवचेतन मन की समग्र गतिविधियों को संचालित करता है। अतएव मनुष्य की अस्मिता, चिंतनशीलता, क्रियाशीलता, अनुभूति और अभिव्यक्ति किसी–न–किसी रूप में भाषा पर ही निर्भर करती है। मनुष्य से भाषा का परिचय विभिन्न रूपों में होता है। सर्वप्रथम मातृ–संस्कारों के साथ, सामाजिक गतिविधियों से, स्कूली शिक्षा से, साहित्य तथा विविध विषयों के अध्ययन से और अनेक प्रकार के तकनीकी माध्यमों से व्यक्ति भाषा के प्रयोग को निरन्तर सीखता है, जो कि मनुष्य जीवन में अनवरत प्रक्रिया चलती रहती है। वास्तव में विभिन्न माध्यमों से मनुष्य जहाँ भाषा सीखता है, वहीं नवीन अन्वेषणों, अनुसंधानों एवं संकल्पनाओं से विविध विषयों में कुछ नये शब्दों, रूपों और अनुप्रयोगों को भी जोड़ता है, जिसके फलस्वरूप भाषा में परिवर्तन, परिवर्धन या क्षरण भी होता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव सभ्यता के विकास में तकनीक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वैसे अपने प्रारंभिक काल से मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न तरीकों से प्रयोग करता आया है, यही प्रयोग

कालांतर में तकनीक के विकसित रूप की परिणति है। मानव के भौतिक विकास में तकनीक का सर्वोपरि योगदान है। इसी के प्रतिफल इस सदी के मनुष्य की तमाम गतिविधियाँ तकनीक द्वारा संचालित हैं या तकनीक–आधारित हैं। आज मनुष्य पूरी तरह से तकनीक पर निर्भर हो चुका है, वह उसकी चिंतनशीलता हो चाहे क्रियाशीलता। इलैक्ट्रॉनिक डिजिटल सूचना प्रौद्योगिकी ने तो मानवीय चिन्तन और कार्यप्रणाली को ही पूरी तरह से बदल दिया है। आज तकनीक ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है, तमाम सुविधाएँ दी हैं, जीवन अत्यन्त सहज और सरल हो गया है, लेकिन इसके ऐवज में बहुत कुछ खोया भी है। यद्यपि तकनीक के अन्वेषण और निर्माण की संकल्पना भी भाषा द्वारा ही संभव है परन्तु उसके उपयोग और प्रयोग से मनुष्य की समग्र गतिविधियों में बदलाव आया है और तदनुरूप परिवर्तन भाषा में भी परिलक्षित होता है। समकालीन जीवन में अधिकतर क्षेत्रों में भाषा की सजगता, प्रवाहमयता, शब्द चयन एवं संयोजन कहीं न कहीं उपलब्ध तकनीक के हिसाब से हो रहा है। यहाँ तक कि अध्ययन–अध्यापन का मुख्य आधार भी तकनीक बनती जा रही है। कदाचित वर्तमान युग में मानव– जीवन तकनीक के बिना कुछ भी नहीं है।

तकनीक के इस युग में हिन्दी भाषा और साहित्य का विश्लेषण किया जाये तो इसका प्रभाव समकालीन भाषा और साहित्य पर व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होता है। भाषिक अध्ययन और प्रयोग की दृष्टि से देखें तो प्रत्येक भाषा के शब्द और शब्दकोष मोबाइल पर उपलब्ध हैं, जिसमें शब्दों के विविध प्रयोग उदाहरण सहित क्षणभर में मिल जाते हैं। आज ग्रंथालयों और पुस्तकों में संचित ज्ञान तकनीक की बदौलत हर समय लोगों के पास उपलब्ध है। भाषा और साहित्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं के अध्ययन में तकनीक की सहायता ली जा सकती है । यह ज्ञान और सूचनाओं का भंडार है। आदमी जिस भाषा या शब्द का मतलब चाहता है, वह उसे विविध प्रकार से मिल जाता है, लेकिन उसका उपयुक्त चयन और सही प्रयोग मानव– मस्तिष्क और विवेक पर निर्भर करता है। कदाचित अपने सही विवेक का इस्तेमाल आदमी नहीं कर रहा है, इसीलिये तकनीक के चलते भाषायी विकृतियों पर अपनी चिंताओं को हिन्दी के समकालीन कवि ने भी ऐसे बयान किया है–

संप्रेषण का यह अदभुत अवतार
कि जिस दिन लंगड़ाई हुई भाषा में पहला
एस.एम.एस. अवतरित हुआ होगा
उस दिन यकीनन व्याकरण की तेरहवीं रही होगी
दुनिया मुट्ठी में हुई पर
यह किसी ने नहीं देखा
कि संवाद अँगुलियों से फिसल गया[3]

जहाँ तकनीक ने आज मनुष्य की दशा और दिशा बदली है; जीवन सहज बनाया है, इसी के प्रतिफल मनुष्य की सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृति और क्षमता कमतर हुई है। तकनीक द्वारा प्रदत्त समग्र सुविधाओं के फलस्वरूप आज सामाजिक सरोकार बदले हैं, भाषायी सजगता और संवेदनशीलता का क्षरण हुआ है, तदन्नतर मानवीय मूल्यों में बदलाव आया है–

शब्द जो देते हैं
जीवन को अर्थ
अहसास को जुबान
कविता को आकार
अब मोबाइल स्क्रीन पर
दौड़ रहे हैं
अब जबकि /मुहावरों की जगह
आ गये हैं चुटकुले
लोकोक्ति की जगह तंत्रोक्ति
अहसास की जगह अविश्वास
कविता/अर्थों में शब्द तलाशती है[4]

मनुष्य के पास अभिव्यक्ति का मुख्य साधन भाषा है, जिसकी निर्मिति शब्दों से होती है। आज इन शब्दों में भी संदर्भगत और अर्थगत बदलाव आ रहा है। मंगलेश डबराल का कथन है–कई शब्द हैं जिन पर हमें गहरा विश्वास था और जो अब अपारदर्शी हो कर अपने अर्थ देना बंद कर चुके हैं। मनुष्यता, प्रतिबद्धता, अच्छाई, गरिमा, सरलता ऐसे ही शब्द हैं, इन्हें पुनर्जीवित करने, फिर से सार्थकता देने के लिए शायद ही

किसी महाकवि या गद्य सम्राट को जन्म लेना पड़ेगा, बशर्ते उसका जन्म संभव रह गया हो, वो साधारण शब्द जो कभी जीवन और मानव संबंधों की असाधारण गहराइयों–ऊँचाइयों को नापने के संवेदित सूत्र थे, हम से छूट गये लगते हैं या उनकी राख हमारे हाथ में बची है। सत्ता–राजनीति में सबसे बुरी चीजों का वर्णन करने में सबसे अच्छे शब्द काम आते हैं, कलात्मक भाषा व्यवसाय की भाषा बन गयी हैं प्रतिभा और रचनात्मकता घटिया उपभोक्ता चीजों के विज्ञापन बनाने में लगी है।[4] मनुष्य का प्रत्येक कार्य–निष्पादन बाजार की जरूरतों के हिसाब से हो रहा है। तदनुरूप भाषा और शब्दों का प्रचलन बढ़ रहा है। वास्तव में शब्द हमारी सोच, प्रवृत्ति, संवेदना और भावना को प्रकट करते हैं और किसी व्यक्ति के अंतःकरण को उद्वेलित करते हैं अथवा किसी भी संकल्पना को अभीष्ट अर्थ देने में सक्षम होते हैं, लेकिन इस युग में परिवारिक और सामाजिक सद्भाव या प्रेम का स्थान व्यावसायिकता ने ले लिया है। हमें सुविधा मिली है, अतः हम सम्पन्नता चाहते हैं। फलतः संवेदनशून्यता बढ़ रही है । समकालीन कविता का एक अंश इस ओर संकेत करता है–

वे शब्द जो मुझे दादा से मिले
उनमें से सुरक्षित है आज भी मेरे पास
वे शब्द जो मिले मुझे मेरी माँ से
मैं भूल चूका हूँ सारे के सारे
वे शब्द जो सीखे मैंने पाठशाला में
सबके सब बो दिये रोटी के लिये
वे शब्द जिन्होंने गिरफ्तार कर लिया मुझे
वे शब्द न मेरी माँ के हैं
न मेरी पाठशाला के
मैं डरता हूँ जिनसे बार–बार
मेरा बच्चा खेल रहा है उनसे लगातार[5]

वास्तव में हम जिस तरह के वातावरण में रहेंगे, वैसे ही शब्द और भाषा प्रयोग करेंगे उससे वैसे ही हमारे संस्कार विकसित होंगे। हमारी प्रवृति, सोच, शिक्षा और संस्कारों का आधार किसी–न–किसी रूप में भाषा ही है। भाषा द्वारा ही हम जन्म से मृत्यु पर्यन्त बतियाते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, सुख–दुख सांझा करते हैं भाषा ही वह माध्यम है जो एक–दूसरे में अपना होने का एहसास करवाता है। इसी के द्वारा पीढ़ियों में परंपराएँ एवं संस्कार जीवित रहते हैं, इतिहास संकलन होता है। संवेदना, सहानुभूति, आत्मीयता, नैतिकता, वात्सल्यता की बुनियाद भाषा और उसमें उपयुक्त शब्द–प्रयोग से ही रखी जा सकती है। दरअसल, प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त होने वाले अपने शब्दों का विशेष अर्थगांभीर्य और रागात्मक संबंध होता है, जो कि भावात्मक अभिव्यक्ति का द्योतक होता है। महज सूचना–संप्रेषण के लिये प्रयोग किये जाने वाले पर्यायवाची या अनुदित शब्दों से अनुभूति के मर्म तक नहीं पहुँचा जा सकता है। अतः अलग–अलग भाषाओं में एक ही अर्थ के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों से हमें एक जैसी अनुभूति नहीं हो सकती है। जैसे गुरु के लिए टीचर ; पत्नी, अर्धांगिनी के स्थान पर वाईफ ; माता–पिता के लिए माम–डैड कहने से हमें किसी भी सूरत में एक जैसी संवेदनात्मक अनुभूति नहीं हो सकती है। वैसे जन्म और मृत्यु से जिस तरह की गहन संवेदनशीलता प्रकट होती है, वह बर्थ और डैथ से नहीं हो सकती है। अतः आज तकनीकी विकास में हम गहन और रागात्मक अनुभूतियों से दूर होते जा रहे हैं, भावनाएँ तथा जज्बात कमतर हो रहे हैं। दूसरी ओर शब्दों का अवमूल्यन भी हुआ है भक्त, चाचा और पप्पू जैसे शब्द सोशल मिडिया में अब सामान्य से इतर नये विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हो रहे हैं।

आज तकनीक से सूचना, संवाद और अभिव्यक्ति के अनेक साधन ईजाद किये हैं, जिसमें फेसबुक, व्ट्सऐप, ट्विटर, इन्स्टाग्राम, ब्लॉग, मेल इत्यादि प्रमुख हैं। अधिकांश लोगों का अधिकतर समय इन्हीं माध्यमों के साथ या तो व्यतीत हो रहा है या नष्ट हो रहा है। मनुष्य इन माध्यमों के सहारे प्रयत्न– लाघव तथा संक्षेपीकरण की ओर निरन्तर बढ़ रहा है, जिससे हमारी भाषायी संवेदनात्मकता और सजगता लगातार क्षीण हो रही है। कवि ज्ञानेन्द्रपति के शब्दों में–

मुझे चन्द्रबिन्दु की चिंता है
लिपि के सुदूर जन तक पसारने वाले
ये छापेखाने रौंदे जायेंगे क्या
देवनागरी लिपि की सर्वाधिक सुन्दर, सुघड़
कोमल आकृति यंत्र वृक्ष में
न रहेगी चंद्रबिन्दु के लिये जगह
सूरज की पीठ पर छापने वाले
अखबार
छापेंगे चंद्रबिन्दु के बगैर
बड़ी होगी जो पीढ़ी बेटे–बेटियों की
अनुस्वार के गोलाकार में
चन्द्रबिंदु की
आस्ताभा नहीं पहचानेगी[6]

वास्तव में वर्तमान टैक्नोलॉजी द्वारा जो भाषा प्रयोग में लाई जा रही है, उसकी लिपि और स्वरूप विकृत हो रहा है। वह शब्दावली सभी पाठकों की समझ और पहुँच से बाहर है। समुदाय, वर्ग या विशेष समाज अपनी सुविधा, सांकेतिकता या संप्रेषणीयता के हिसाब से भाषा को तोड़–मरोड़ रहा है। जैसी नवीन विकृत्त शब्दावली है, वैसी ही इसकी अर्थसंप्रेषणीयता, जो प्रतिदिन किसी–न–किसी नये संदर्भों और अर्थों का उद्‌घाटन करती है। उपभोक्त –वादी संस्कृति में शब्द दोहन के शिकार बन जाते हैं और संस्कारित तत्त्व क्षरित होने लगता है। इस दौर में शब्दों का न सही प्रयोग हो रहा है, न ही अभीष्ट अर्थ निकल रहा है। समकालीन कवि ने तकनीक के इस युग में भाषा और लिपि की विकृत्तियों और विलोपन पर गहरी चिंता व्यक्त की है–

चिंता करो मूर्धन्य ष की
किसी तरह बचा सको तो बचा लो ङ
देखो कौन चुरा कर ले जा रहा है खड़ी पाई
और नागरी के सारे अंक
जाने कहाँ चला गया ऋषियों का ऋ[7]

आज हमारे समक्ष जैसे–जैसे नयी चीजें आ रही हैं, उसी तरह नित नयी संकल्पनाएँ एवं अवधारणाएँ बन रही हैं और तद्‌नुरूप शब्दावली निर्मित हो रही है। पारंपरिक मान्यताएँ, अवस्थाएँ एवं धारणाएँ खत्म हो रही हैं। यहाँ तक कि कई प्रजातियों के पेड़–पौधे, अनाज, जीव–जन्तु, उपयोगी वस्तुएँ, गतिविधियाँ और विभिन्न अवस्थाओं के लिये प्रयुक्त प्रचलित शब्द विलुप्त हो गये हैं, जो हमें अपनी थाति और वजूद का अहसास करवाते हैं। अगली पीढ़ी पिछली पीढ़ी के समय की बहुत सारी चीजों और अवधारणाओं से अनभिज्ञ है। विकास और परिवर्तन में नई और आधुनिक वस्तुओं और संकल्पनाओं का उपयोग उचित है, लेकिन विरासत में मिल रहे आत्मीय अहसास, भाषा और संस्कृति को बचाए रखना अत्यन्त आवश्यक है। तकनीकी माध्यमों से उपयुक्त शब्द और उपयुक्त भाषा का प्रयोग प्रभावी ढंग से किया जा सकता है, बशर्ते सजग, सचेत और संवेदनशील हों। अशुद्ध शब्द, अनुपयुक्त शब्द, अशुद्ध वर्तनी, अशुद्ध वाक्य और व्याकरणविहीन भाषा के लिये तकनीक उतरदायी नहीं है बल्कि उसका प्रयोक्ता जिम्मेवार होता है। सही भाषा और उपयुक्त शब्द की उपयोगिता, सार्थकता और प्रभावान्विति का बखान करती कवि कुमार विकल की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय है–

मुझे शब्दों की हिफाजत
अपने तरीके से करनी है
और पहली लड़ाई
उस आदमी के खिलाफ लड़नी है
जो शब्दों की अर्थवत्ता को तोड़ता है
और दूसरी उसके विरुद्ध
जो शब्दों की अर्थवत्ता छोड़ता है[8]

तकनीकी युग में साहित्य पर विचार करें, तो रचनात्मक क्षेत्र में अनंत संभावनाओं के द्वार खुले हैं। साहित्य में तकनीक के प्रयोग से जहाँ साहित्य की समस्त विधाओं के स्वरूप में परिवर्तन आया है, वहीं अभिव्यक्ति और संप्रेषण को भी नया रूप मिला है। लेखक अपनी रचनाओं को व्यापकता प्रदान करने में सफल हुए हैं। इस युग में साहित्य के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार वांछनीय है–

1. साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, यह वर्तमान संदर्भ में कितना प्रासंगिक है?
2. साहित्य से आज का समाज प्रभावित हो रहा है अथवा नहीं?

3. आदिकाल से समाज में साहित्य की जो भूमिका रही है, उस हिसाब से वर्तमान में क्या स्थिति है?
4. आज आम जन तक साहित्य की कितनी पहुँच है?
5. समकालीन साहित्य समय और समाज सापेक्ष है अथवा नहीं?
6. भूमंडलीकरण के इस युग में साहित्य से क्या अपेक्षाएँ हैं?

यह एक सर्वजनीन तथ्य है, कि साहित्य सृजन मुख्यतः लोक हित के लिये किया जाता है। तुलसीदास ने तो यहाँ तक कहा था 'स्वांत सुखाय हरि कथा कहावा' लेकिन तुलसी साहित्य का परम लक्ष्य लोक–कल्याण ही था। इसमें कोई दो राय नहीं कि श्रेष्ठ साहित्य वही होता है, जिसमें अतीत का गौरव, वर्तमान की सजीवता और भविष्य की सम्भावनाएँ तथा चिन्ताएँ विद्यमान हों। समाज का जीवन्त विवरण जब साहित्य में आयेगा तभी वह समाज का दर्पण कहलाएगा और समाज को प्रभावित कर सकेगा। भाषा तो हम रोबोट को भी सिखा सकते हैं, परंतु भावनाओं से सिर्फ इन्सान ही जुड़ पाता है। साहित्य हमें सिखाता है कि अपने कर्त्तव्यों को कैसे मानवीय संवेदनाओं के साथ निभाना चाहिए। अपने समाज की विशिष्टताओं, विचित्र–ताओं, विडंबनाओं, विद्रूपताओं और विसंगतियों के व्यापक विवेचन से साहित्य द्वारा आम पाठक के समक्ष समाज की वास्तविक तस्वीर को रेखांकित किया जाता है। जीवन में कुछ अनसुलझे तथ्य और प्रश्न, जो सामान्य व्यवहार में उद्धृत नहीं हो पाते हैं, साहित्य में कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से विविध रूपों में प्रकट हो जाते हैं, यही साहित्य की पहली श्रेष्ठता है।

कविता
शब्दों की तरकश से निकली
एक ऐसी बानगी है
जिसमें एक रूह होती है
जहाँ बेजुबान होता है आदमी
वहाँ कविता बोलती है[8]

वर्तमान युग के साहित्य में हमारे पास अनेक ऐसे रूप मिलते हैं, जिसमें लेखकों, कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा समकालीन समाज के परिदृष्य को रेखांकित किया है और मनुष्य जीवन की अनिवार्यताओं के विषय में सचेत किया है। सुविधा, संपन्नता के इस युग में मनुष्य की जीवन–शैली में जो बदलाव आया है, उससे जीने के तौर–तरीके, दृष्टिकोण, प्राथमिकताएँ और व्यावहारिकताएँ बदल गई हैं। लोगों में बाह्य आकर्षण, बाहरी दिखावट तथा बनावट और संवेदनशून्यता बढ़ी है। समकालीन जीवन की इसी स्थिति को बयाँ करती कविता की ये पंक्तियाँ अवलोकनीय है–

खूबसूरत घरों में
कोई नहीं करता किसी का इंतजार
खूबसूरत घरों में
उगे रहते हैं तमाम तरह के विदेशी फूल
खूबसूरत घरों में नहीं उगता तुलसी का पौधा
खूबसूरत घरों के लोग करते हैं
मनुष्य से भी अधिक अपने सामान से प्यार
तभी तो होते हैं खूबसूरत घरों के
कई कई पहरेदार[9]

इस सदी में हमारे समाज में परिवर्तन की सामान्य प्रक्रिया से हट कर कई बदलाव आये हैं। आदमी की जीवन–चर्या, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा शिक्षा, संबंध एवं सामाजिक सरोकार बदले हैं। एक साधारण आदमी से लेकर संपन्नतम् व्यक्ति तक की अर्थ–लिप्सा अनवरत बढ़ रही है। धन की इस लोलुपता ने मनुष्य जीवन के मायने बदल दिये हैं। ईष्या, द्वेष, अहंकार एवं महत्त्वाकांक्षा ने हर आदमी की स्वार्थपरायणता को चरम तक पहुंचा दिया है। सूचना, संचार और तकनीक के दौर में घर–परिवार, रिश्ते, मर्यादाएँ, सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक सरोकारों में परिवर्तन हुआ है। साहित्य ने इन तमाम स्थितियों को बड़ी बारीकी से रेखांकित किया है। ऐसे ही हालात की तरफ इशारा करते हुए समाज की मूल इकाई परिवार के विघटन के उपरान्त परिवर्तित मनुष्य की स्थिति को व्यक्त करती समकालीन कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

बाबा को जानता था सारा शहर
पिता को भी चार मुहल्ले लोग जानते थे

मुझे नहीं जानता मेरा पड़ोसी मेरे नाम से
कम हो रही है लोगों की पहचान
सुख–दुख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होतेलोग
अब सिर्फ एलबम में रहते हैं
परिवार के लोग एक साथ[10]

एकल पारिवारिक एवं सांस्कृतिक–मूल्यों के ह्रास के कारण आज समाज में तरह–तरह की विकृत्तियाँ पैदा हो रही हैं। मनुष्य मानवीय–मूल्य को भूलकर जीवन जीने की कोशिश कर रहा है। इन मूल्यों के क्षरण से मानव–आचरण और चरित्र में गिरावट आ रही है। तकनीकी युग ने मनुष्य के लिये आभासी संसार का निर्माण किया है। इसमें आगे बढ़ने और प्रगति करने की बेशुमार संभावनाएँ परिलक्षित होती हैं। ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं, कि मनुष्य अपनी अस्मिता को विस्मृत कर उसी संसार में अपनी दुनिया बसाने की सोचता है। कहानीकार एस॰ आर॰ हरनोट 'मोबाईल' कहानी में बहुराष्ट्रीय कम्पनी दवारा निर्मित आभासी दुनिया की ओर इशारा करते हैं–'अब बच्ची के हाथ में न कोई कटोरा होता और न कोई भगवान। न मैली फ्रॉक से उसका बदन ही ढका रहता। वह बिल्कुल नंगी होती। उसके नंगे बदन पर कम्पनी के नाम और मोबाईल फोन के स्टिकर चिपके रहते। वह दिनभर कंपनी के बताए रास्तों पर चलती रहती। शाम होती तो कम्पनी वाले उसके बदन से अपने विज्ञापन उतार देते और वही पुरानी फ्रॉकपहनाकर उसे भेज देते।'[11] इस युग में सूचना, प्रौद्योगिकी और भूमंडलीकरण के प्रतिफल रोजगार, कारोबार; तदनंतर धनार्जन के अतिरिक्त साधन विकसित हुए हैं, जिसके फलस्वरूप लोलुपता और महत्त्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति जीवन में किसी भी तरह का समझौता करने पर आमदा हो जाता है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व को दरकिनार कर आगे बढ़ने का प्रयास करता है। समकालीन साहित्य में इन सारी परिस्थितियों का व्यापक फ़लक पर विवेचन किया गया है, साथ ही जीवन की वास्तविकता से अवगत करवाया गया है और भविष्य की संभावित चुनौतियों से सचेत किया है–

कितना सुंदर, कितना अद्‌भुत
कितना लुभावना, कितना आकर्षक
कितना म्युजिकल, कितना ख़ामोश
कितना हंसमुख, कितना ख़तरनाक है यह बाज़ार का हमला
सोचता हूँ जब आएँगी बड़ी–बड़ी चीजें
तब बच पाएगा कैसे–
रघुवीर सहाय का दयाशंकर, जगुड़ी का बलदेव खटिक
ऋतुराज का हसरुद्दीन, कुमार कृष्ण का छेरिंग दोरजे
ज्ञानेंद्रपति का राम खेलावन, राजेश जोशी का रमजान मियाँ
मुश्किल, बहुत मुश्किल है–
प्रेमचन्द के हलकू का बच पाना
जब तमाम खेत बदल जाएँगे शॉपिंग माल में
तब कहाँ बनाएगा हलकू अपना छोटा सा मचान[12]

इस युग में जहाँ काम–काज के तौर–तरीके बदले हैं, वहीं पारिवारिक एवं सामाजिक अवधारणाओं तथा मान्यताओं में बड़ा परिवर्तन आया है। इसका मुख्य कारक है–तकनीकी विकास और उस पर हमारी उत्तरोत्तर निर्भरता। पहले रेडियो और टेलीविजन सूचना और मनोरंजन का साधन था। इन माध्यमों ने दशकों तक सामाजिक विकास और लोकजागरण में अद्वितीय भूमिका का निर्वहन व्यापक स्तर पर किया है, आज भी इनका महत्त्व है और कई मायनों में भविष्य में भी रहेगा। इन माध्यमों की एक बड़ी विशेषता ये रही, कि जब तक इन पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था और कोई निजी चौनल नहीं होता था, तब तक यहाँ ऐसा कोई भी प्रसारण नहीं होता था जिससे समाज के किसी भी वर्ग पर कोई नकारात्मक प्रभाव पड़े, वरन् तकनीक के इन माध्यमों का सकारात्मक पक्ष ही सर्वोपरि रहा है। सूचना, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस सदी में सर्वाधिक विकास हुआ, वैसा ही लोगों में इसके प्रति आकर्षण बढ़ा है। कम्प्यूटर और मोबाईल इसके सबसे लोकप्रिय उपकरण हैं। आज आलम ये है कि जिस व्यक्ति के पास दो वक्त की रोटी उपलब्ध नहीं हैं,

उसके पास भी मोबाईल फोन अवश्य होगा। अर्थात इस युग में मोबाईल रोटी, कपड़ा और मकान से भी ज्यादा जरूरी हो गया है। इस तरह जो वस्तु जीवन के लिये इतनी जरूरी हो जाए, जाहिर है उसका उपयोग, उपभोग, प्रयोग और प्रभाव भी ऐसा ही होगा। मोबाईल द्वारा होने वाली तमाम गतिविधियों ने आदमी को पूरी तरह से अपनी गिरिफ़्त में ले लिया है, यूँ कहें कि अधिकतर लोग इतने आदी हो चुके हैं कि मोबाईल के बिना वो रह ही नहीं सकते। इस तकनीक के प्रतिफल दुनिया आदमी की मुट्ठी में है लेकिन आदमी मोबाईल के हाथों की कठपुतली है,रात–दिन इसी में रमा, इसी के सहारे जी रहा है–

पति–पत्नी में भी है
वट्सएप पर वार्तालाप
पाँच इंच की स्क्रीन पर
सिमट गया है आदमी
इंटरनेट में समाया है
मेरा गाँव

वास्तव में इस तकनीक ने एक नवजात शिशु से लेकर उम्रदराज़ बजुर्ग तक प्रत्येक व्यक्ति को आकर्षित और प्रभावित किया है। इसमें कोई दो राय नहीं, मोबाईल ने आदमी के जीवन की परिभाषा बदल दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि आदमी का अहसास, विश्वास, नीति और निर्धारण, विचार, विवेचन, रीत–रस्म, वर्तमान और भविष्य मोबाईल पर परिचालित गतिविधियों द्वारा ही संचालित हो रहा है। आज मनुष्य–जीवन का सार गूगल पर ही तलाश रहा है। गूगल आज अतीत का दस्तावेज ,वर्तमान का वृत्तचित्र और भविष्य का रेखाचित्र है। इस तकनीक के अधिसंख्य उपयोग से मनुष्य जीवन बड़ा सहज और स्वावलंबी बना है। महीनों का काम दिनों में और दिनों का काम घंटों में हो जाता है। इस तकनीक की बदौलत जहाँ वैयक्तिक और सामाजिक दूरियाँ खत्म हुई है, वहीं औपचारिक–ताएँ बढ़ी हैं। जीवन के लिए अनिवार्य संस्कार, संवेदनाएँ, भावनाएँ एवं रिश्तों की गर्माहट कम हुई है। साथ ही इस तकनीक से बड़ों का दायित्त्वबोध और बच्चों का बालपन खत्म हुआ जा रहा है। हिन्दी कविता में समकालीन जीवन में तकनीक के प्रभाव–दुष्प्रभाव और तज्जनित विकृत्तियों तथा चिंताओं को बयाँ करते हुए इस सदी के पिता और बच्चे की तकनीकी आसक्ति तथा तद्नुरूप परिस्थितियों को चित्रित किया है–

बोलता जा रहा था बच्चा लगातार
बड़बड़ाता सा खींचता हुआ उसकी कमीज़
दरअसल सुनने वालों के कानों में
चिपका हुआ था मोबाइल
और वे मगन हैं अपनी दुनिया में...
वह सोच रहा है एक विकल्प–
पापा के साथ टहलने से अच्छा था
घर पर विडियो गेम खेलना
उसका इस तरह सोचना
इस सदी का एक खतरनाक हादसा है[13]

समकालीन साहित्य ने आज के समाज की तमाम विशेषताओं, उपलब्धियों तथा जटिलताओं के साथ उनके प्रभावों को बारीकी से रेखांकित किया है। मनुष्य जीवन में होने वाले बदलावों से उपजने वाली विसंगतियों और विकृत्तियों को उजागर करते हुए पथ–प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन किया है। चित्रा मुद्गल के शब्दों में– 'इंटरनेट' ने तो भूमंडलीकरण आज किया है, लेकिन जब हम यहाँ बैठे ऑस्कर वाइल्ड या टालस्टॉय पढ़ा करते थे, तो यूरोप का विक्टोरिया या रूसी समाज हमारी आँखों के सामने आ जाता था। साहित्य समाज में वैचारिक आंदोलन लाता है। अब तो प्रेम जताने के लिये भी दूसरों के लिखे शब्दों का कार्ड भेजा जाता है। हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता है, कि ऐसी शिक्षा एवं टेक्नोलॉजी आखिर हमें कहाँ ढकेल रही है।'[14]

आदिकाल से साहित्य समाज में प्रेम, सौहार्द, सद्भाव और भाईचारे की वकालत करता आया है। इसीलिये साहित्य–सृजन 'मंगल भवन अमंगल हारी' के निमित्त किया जाता है। यद्यपि तकनीक पर निर्भर इस पीढ़ी को साहित्य अध्ययन और समझ से अधिक सरोकार नहीं है, फिर भी मनुष्य के भीतर संवेदनशीलता जागृत करने का निरंतर प्रयास साहित्य करता रहेगा। वह कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य या

आलोचना इत्यादि किसी भी विधा द्वारा किया जा सकता है। सुविधा और विलासिता से भरे–पूरे इस युग में सर्वाधिक विखंडन मानवीय रिश्तों और मूल्यों का हुआ है, जहाँ आत्मकेन्द्रिकता और अभीप्सित महत्त्वकांक्षाओं ने रिश्तों की गर्माहट और आत्मीय अहसास को क्षीण किया है। समकालीन कविता यही महसूस करवाने की कोशिश करती है। ऐसे प्रतीत होता है जैसे कवि संबोधित करते हुए कहता है–

तो माधो जब करता है कोई प्यार
तो उसके हाथों से न तो उजड़ता है कोई
घोंसला
न फूटता है काँच का गिलास
न हो सकता है उसके हाथों तिनके का भी
अनिष्ट[15]

आज साहित्यकार देख रहा है कि ज्यों–ज्यों सूचना का तीव्र प्रसार होता जा रहा है, मानवीय संबंध उतने ही सीमित हो रहे हैं, संवेदना दबती जा रही है। संबंध और संवेदना पर सूचना और जानकारी हावी होती जा रही है। आज के तेज रफ़्तार वाले समय में शोक–संदेश या बधाई के शब्द, सब कुछ टेक्नालॉजी के जरिये निपटाए जाने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। वास्तव में उपभोक्तावाद की संवेदनहीनता मनुष्य के लिये ख़तरनाक है। इस संदर्भ में एकांत श्रीवास्तव का कथन ध्यातव्य है– संवेदना का पुल ही हमें अपने वैयक्तिक जीवन की परिधि को पार करने के लिए प्रेरित करता है और दूसरों तक पहुँचने में हमारी सहायता करता है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, मुक्त बाज़ार और विराट पूँजी के इस दौर में इस पुल को उड़ा देने की साज़िश है। इसके परिणाम ख़तरनाक होंगे।[16] ऐसी परिस्थिति में साहित्य में मानवीय संबंध और संवेदना का संसार स्थापित करने का प्रयास किया है। अरुण कमल के शब्दों में–

वो क्या है जो आदमी को खींच ले जाता है आदमी
के पास
क्या है वो रिश्ता खून से परे
वो शहद का ओंस का रिश्ता
वो काँटों भरी बबूल की देह से छूटी गोंद का रिश्ता
वो बँट रही रस्सी के सूत के धागों का रिश्ता[17]

मनुष्य होने के नाते जीवन में संवेदना जरूरी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते संबंध जरूरी है। आज भूमंडलीकरण के समय में उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रतिपक्ष में समकालीन साहित्य इन संबंधों और संवेदनाओं को बचाने की वकालत करता है। सूचना और तकनीक के व्यापक विस्तार से इस युग में दुनिया छोटी हो गई है, पर बच्चे, माँ–बाप से इतने दूर हो गये है, कि एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी के साथ कोई तादात्म्य स्थापित नहीं हो रहा है। परंपरागत मूल्य क्षीण हो रहे हैं; उपभोक्तावादी संस्कृति द्वारा परिचालित जीवन–मूल्य आज की जीवन–शैली में स्थान बना रहे हैं। फेसबुक, व्ट्सएप, इन्स्टाग्राम, ट्विटर, ब्लॉग, मेल के इस युग में पारिवारिक संस्कार और पारंपरिक जीवन–मूल्यों को अगली पीढ़ी तक संरक्षित रखना साहित्य–कारों की दृष्टि में आज सबसे बड़ी चुनौती है–

पुरखों के ज़माने की चीज़ें
हमारे पिताओं ने पढ़ी पुस्तकों में
हमारे जमाने की चीज़ें
शायद हमारे बच्चे
पुस्तकों में भी नहीं पढ़ पायेंगे[18]

जीवन में सार्थकता, सबलता, शालीनता, संवेदनशीलता, विश्वसनीयता, भावनात्मकता और सहानुभूति को जिंदा रखने के लिये विरासत में मिलने वाली परंपराओं और संस्कारों को बचाए रखने का आग्रह कवि कर रहा है–

सुनो नींद में एक बच्चे की कुनकुनाहट
रोटियाँ बेलती एक स्त्री की गुनगुनाहट
एक पके फल के पृथ्वी पर गिरने की आवाज
मेघों का गर्जन /पशुओं का संदेश
सुनो जो सुनाई नहीं दे रहा है
सुनो अपनी आत्मा को
जो सदियों से जो तुमसे कुछ कहना चाहती है[19]

इस युग में विभिन्न तकनीकी माध्यमों द्वारा साहित्य किसी–न–किसी रूप में जनमानस तक पहुँच रहा है, जबकि पूर्व में एक मात्र माध्यम पुस्तकें ही होती थीं और पुस्तकें अधिकांश लोगों की पहुँच से बाहर थीं। कदाचित साहित्य का प्रभाव भी इसीलिये सीमित था। यद्यपि आज साहित्य का प्रभाव तात्कालिक है, जिसमें

स्थायित्व का अभाव रहता है, लेकिन प्रत्येक काल की भाँति इस काल में भी साहित्य की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है, बल्कि आज तकनीक से इसकी प्रभावान्विति और क्षेत्र का विस्तार हुआ है। मनुष्य चाहे कितना ही विकसित, विज्ञान सम्पन्न और तर्कशील हो जाए, उसे उचित–अनुचित का विवेक, भावनाओं, संवेदनाओं का निग्रह साहित्य से ही होगा। वस्तुतः जीवन की वास्तविकता तथा मर्म के समझने के लिए अपनी ज़मीन, अस्मिता, परंपरा, पहचान और रिश्तों की गर्माहट को बचाए रखना अनिवार्य है। साहित्यकारों का इस युग में भी यही आग्रह है–

बचाना ही हो तो बचाए जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा
पेड़ों में घौंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में
नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी[20]

इस युग में सामाजिक विकास, विश्व बाज़ार, औद्योगीकरण और विविध तकनीकी सुविधाओं से मनुष्य के जीवन–स्तर में बहुत सुधार हुआ है। इसी के फलस्वरूप उपभोगवाद और अर्थलोलुप्ता बढ़ी है। आर्थिक सम्पन्नता के बाद मनुष्य की सोच और समझ में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, यहीं से उसकी प्राथमिकताएँ भी बदलती हैं और महत्वकांक्षाएँ भी बढ़ती हैं। इस काल में भौतिक विकास तो बहुत हुआ और निरंतर हो रहा है परंतु बहुत कुछ नष्ट भी हो रहा है। वास्तव में सिर्फ रूपयों, वस्तुओं, उपकरणों, सुख–सुविधाओं और ऐश्वर्य प्रसाधनों जैसे भौतिक पदार्थों से ही मनुष्य जीवन नहीं जीया जा सकता है। ये चीजें शारीरिक सुख दे सकती हैं, परंतु मानसिक सुकून कदापि नहीं मिल सकता है। अतः कंप्यूटर, इंटरनेट और मोबाइल की इस दुनिया में जी रहे आदमी में असामाजिकता, व्याकुलता, अनैतिकता, तत्परता, आतुरता और एकाकीपन बढ़ा है। इस युग के साहित्यकारों को विश्वास है, कि मानव जीवन में सैद्धान्तिक अनिवार्यताएँ सदैव रहेंगी–

मैं तो बस इतना जानता हूँ
कि कुछ रह जाएगा
क्या तुम्हें यकीन है
मर जायेंगी जिजीविषाएँ
झर जायेंगी आस्थाएँ
सूख जायेंगे सपने
व्यर्थ हो जायेंगे शब्द
क्या तुम्हें यकीन है
आग सब कुछ जला सकती है
सब कुछ सुखा सकती है हवा
पानी सब कुछ गला सकता है
सब कुछ मिटा सकता है ब्रह्मास्त्र
नहीं जरूर कुछ रह जायेगा[21]

वास्तव में यह समय मानव व मनुष्यता के लिये अनेक प्रकार की चुनौतियों का समय है, जिसमें परिवार से लेकर राष्ट्र तक प्रतिदिन परिस्थितियाँ बदलती हैं और जीवन की नयी परिभाषा बन रही हैं। आज के समय को स्पष्ट करते हुए 'शब्द की जगह' निबंध में एकांत श्रीवास्तव लिखते हैं– यह जो समय है, कैसा समय है? पूंजीवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और बाज़ारवाद का समय, भूमंडलीकरण, युद्ध और उन्माद का समय। निकृष्ट राजनीति का समय, भूख, गरीबी, बेरोजगारी और अपराध का समय। जड़ होती हुई बौद्धिकता और मरती हुई संवेदना का समय। तीव्र गति से सूचनाओं के आने का समय। गति और सूचनाओं से अस्थिर यह फास्ट लाईफ जो हमें कहीं नहीं पहुँचाती। ऐसे में कविता में उस घर और गाँव को बचाने का निरंतर प्रयत्न है, भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के इस दौर में जिनके उजड़ने का ख़तरा लगातार हमारे सिर पर मंडरा रहा है।[22] तकनीकी युग के साहित्य में अपने समय, स्थिति और चुनौतियों को अभिव्यक्ति दी गई है और बड़ी सूक्ष्मता तथा कलात्मकता से इसका व्यापक विवेचन और व्याख्या की गई है। इसमें इस समय की विशेषताएँ और विकृत्तियाँ बराबर दृष्टिगोचर होती हैं तथा लोकचेतना और लोक–जागरण के साथ भविष्य की संभावनाओं का रेखांकन किया गया है। साहित्य की प्रत्येक विधा में काल्पनिकता की बज़ाय समाज–सापेक्ष समकालीनता परिलक्षित होती है। इसीलिये इसमें सामाजिक अवस्था का जीवन्त वर्णन मिलता है और साहित्यकार समाज पर पडने वाले अच्छे

और बुरे प्रभाव का विश्लेषण कर समाज के लिये पथ–प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन भी करता है। इसी प्रकार आज के साहित्य में और मनुष्य की जीवनचर्या में तकनीक का प्रवेश, प्रभाव, प्रयोग, सदुपयोग और दुरूपयोग स्वतः अनुस्यूत है, इसकी वस्तुस्थिति को वीरेंद्र सिंह कुछ ऐसे स्पष्ट करते हैं–आज तकनीक ऐसे बेलगाम घोड़े की तरह है, जो सवारी में आनंद तो देता है, परन्तु सफर तब तक दुर्घटनाओं से आशंकित है, जब तक उसे लगाम न पहनाई जाए। तकनीक का इस्तेमाल बंद करने का सुझाव समाधान नहीं, जरूरत है तो इसके नियंत्रित इस्तेमाल की, अन्यथा यह घातक सिद्ध होगी– भाषा के लिये, साहित्य के लिये और समाज के लिये भी।[23] निःसंदेह तकनीक के प्रतिफल पल्लवित, परि–चालित तथा विकृत्त अवस्था और परिस्थिति आज विचारणीय है–

कविता में
जब नहीं सुनी जायेगी
आत्मा की आवाज
सूख जायेंगे रिश्तों के सरोवर
टी.वी. सीरीयल में दिखेगा
इंतज़ार, इज़हार, इकरार और प्यार
कहानियों में ही पढ़ा जाएगा
आस्था, विश्वास, अहसास और जजबात
सिर्फ खिलौने से खेलता रहेगा आदमी
बेटा कैद करेगा
पिता की अंतिम साँसे
कर देगा पोस्ट अपनी वाल पर
{यह कह कर}
ये थी मेरे पिता की
आखिरी सेल्फी

तकनीकी युग में भाषा और साहित्य के विवेचन के उपरान्त कुछ तथ्य हमारे सामने स्पष्ट हो जाते हैं। वह ये कि तकनीक मनुष्य द्वारा आविष्कृत अपनी सुविधा के निमित्त है, जिससे भाषा और साहित्य का अध्ययन और प्रयोग सहज हुआ है। तकनीकी सुविधा के बावजूद भाषा में जो विकृत्तियाँ आई हैं, उसका मुख्य कारण मनुष्य का भाषा के प्रति सजगता का अभाव है तथा अपनी संस्कृति, सभ्यता और परंपरा की उपेक्षा के साथ तथाकथित आधुनिकतावाद का आकर्षण और व्यावसायीकरण है। भाषा के विकार और बदलते स्वरूप के प्रभाव भी इस युग के मानव–समाज में विभिन्न रूपों में देखे जा सकते हैं। तकनीकी युग में साहित्यकार हर काल की भाँति निरंतर सृजनशील है। साहित्य–सृजन और उपार्जन के लिये टैक्ना–लॉजी सहज और उपयोगी माध्यम है। इस काल के साहित्य में समकालीन समाज की विशिष्ट–ताओं, विडंबनाओं, विद्रूपताओं, विसंगतियों, दुर्बलताओं, अन्तर्विरोधों और अवस्थाओं का व्यापक फ़लक पर विवेचन किया गया है। अद्यतन मानवीय चिंतन, विचार, अनुभव और संवेदनाओं का कलात्मक निरूपण हुआ है। इस काल के साहित्यकारों ने वर्तमान समाज की वास्तविक तस्वीर उकेरते हुए लोकजीवन में मनुष्य का सही पथ–प्रदर्शन करने का प्रयास किया है। इस साहित्य में मनुष्य–जीवन के विविध पक्षों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ उद्घाटित किया गया है और ये साहित्य लोकमंगल, लोकजागरण और लोकचेतना का निर्वहन करता है। इस काल में भी साहित्य समाज में अपनी महत्ती भूमिका निभा रहा है भले ही सूचना प्रौद्योगिकी, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद की चकाचौंध में अधिकांश लोगों को साहित्य की उपयोगिता और सार्थकता प्रत्यक्ष रूप में नज़र नहीं आ रही है। अतः मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान करवाने, उसकी बौद्धिक और वैचारिक सम्पृक्ति में तथा उसमें अंतर्निहित संवेदनात्मक तथा भावनात्मक विकास में साहित्य आज भी सर्वोपरि है और भविष्य में भी रहेगा।

संदर्भ सूची :

1.हजारीप्रसाद द्विवेदी, भाषा साहित्य और देश, भारतीय ज्ञानपीठ,दिल्ली, 2001, पृ. 25
2.संपादकीय, विपाशा, शिमला, अंक–129 जुलाई–अगस्त 2007, पृ. 3
3.नवनीत शर्मा, ढूंढना मुझे, बोधी प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ. 35

4. मंगलेश डबराल, लेखक की रोटी, आधार प्रकाशन पंचकूला, हरियाणा, 1998, पृ. 151
5. कुमार कृष्ण, पहाड़ पर नदियों के घर, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2004, पृ.10
6. ज्ञानेंद्रपति, संशयात्मा, किताब घर, प्रकाशन, दिल्ली, 2004 पृ. 176–177
7. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 21
8. कुमार विकल, संपूर्ण कविताएँ, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2016, पृ. 39
10. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 55
11. एस. आर. हरनोट, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ. 40
12. कुमार कृष्ण, इस भयानक समय में, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 47–48
13. आत्मा रंजन, पगडण्डियाँ गवाह हैं, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2011, पृ. 66–67
14. चित्रा मुद्गल, 'हम रोबोट तो पैदा नहीं कर रहे', समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 198, नवंबर–दिसंबर, 2017, पृ. 189
15. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. 127
16. एकांत श्रीवास्तव, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2006, पृ. 94
17. अरुण कमल, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ 48
18. एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2000, पृ. 66
19. वही, पृ. 18
20. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. 18
21. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, फिर भी कुछ रह जाएगा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008, पृ. 86–87
22. एकांत श्रीवास्तव, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2006, पृ .95
23. वीरेन्द्र सिंह, 'तकनीकी युग में भाषा और साहित्य : संगोष्ठी रिपोर्ट', हिमप्रस्थ, शिमला, अंक–6, सितंबर, 2019, पृ. 56

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
उत्कृष्ट शिक्षा केंद्र, राजकीय महाविद्यालय
संजौली, शिमला
हिमाचल प्रदेश

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Reg. No. 124726035RC0001
ISSN : 2562-6086
Price : $ 20.00 - Rs. 350

वर्ष 4, अक्टूबर-दिसंबर 2022 अंक 4

पुस्तक भारती के प्रकाशन

संपादकीय कार्यालय
Toronto, Ontario, Canada, M2R
email : pustak.bharati.canada@gmail.com
Web : pustak-bharati-canad.com

प्रबंध एवं वितरण
Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors
H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India
email: pustak.bharati.india@gmail.com